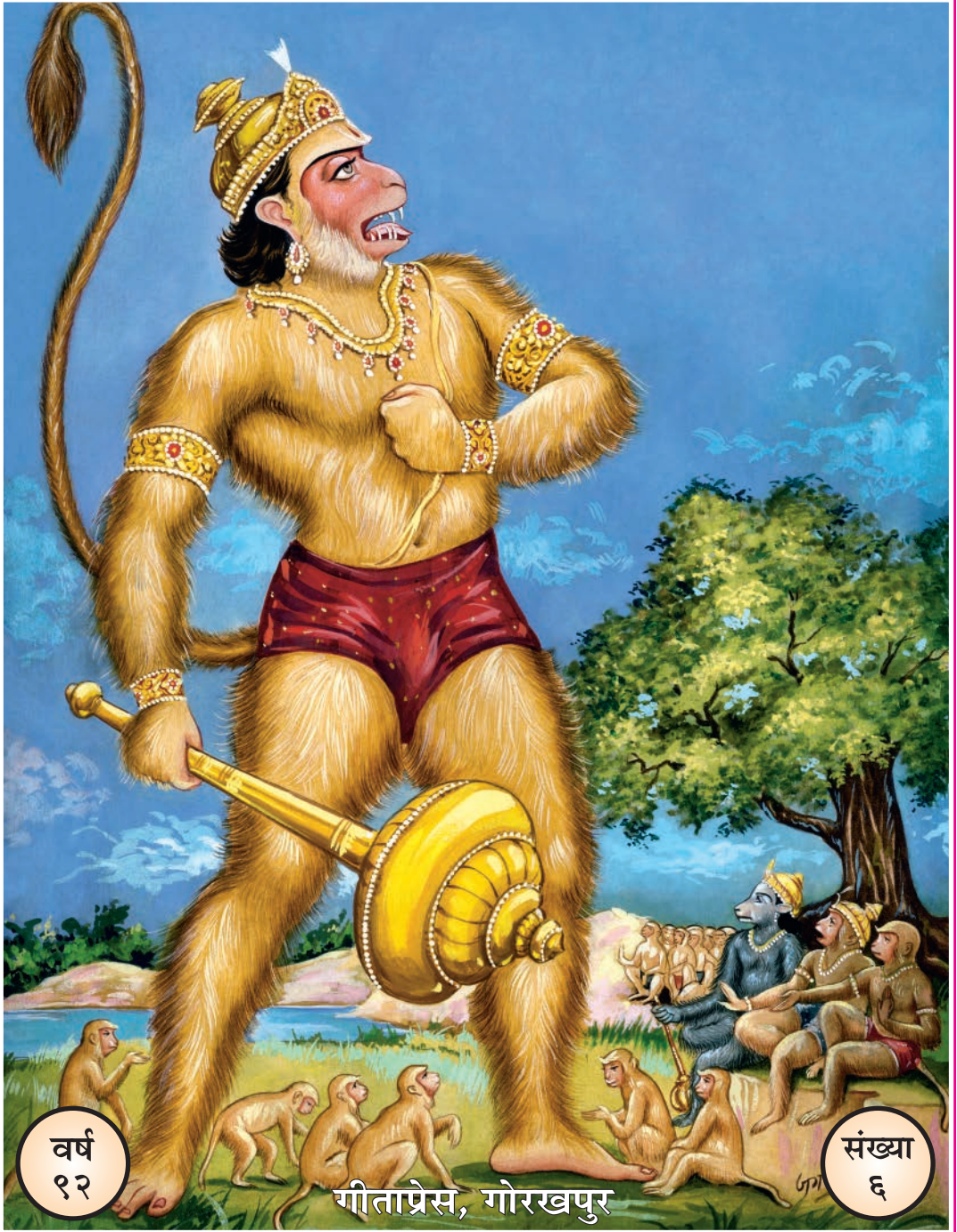


* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये



वर्ष
९२

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या
६

पर्वताकार श्रीहनुमान्जी



COLLECTION OF VARIOUS
-> **HINDUISM SCRIPTURES**
-> **HINDU COMICS**
-> **AYURVEDA**
-> **MAGZINES**

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

**I creator of
hinduism
server!**



KAPWING



ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम् ॥

वर्ष
९२

गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, जून २०१८ ई०

संख्या
६

पूर्ण संख्या १०९९

‘झूलत राम पालने सोहैं’

झूलत राम पालने सोहैं। भूरि-भाग जननी जन जोहैं ॥
तन मृदु मंजुल मेचकताई। झलकति बाल बिभूषन झाँई ॥
अधर-पानि-पद लोहित लोने। सर-सिंगार भव-सारस सोने ॥
किलकत निरखि बिलोल खेलौना। मनहुँ बिनोद लरत छबि छौना ॥
रंजित-अंजन कंज-बिलोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥
लस मसिबिंदु बदन-बिधु नीको। चितवत चितचकोर तुलसीको ॥

श्रीरामलला पालनेमें झूलते हुए शोभा पा रहे हैं और बड़भागिनी माताएँ उनकी ओर निहार रही हैं। भगवान्‌के शरीरमें अति मृदुल और मंजुल श्यामता सुशोभित है, जिसपर बालोचित आभूषणोंकी झाँई झलक रही है। प्रभुके अति सुन्दर अरुणवर्ण ओठ, हाथ और चरण ऐसे जान पड़ते हैं, मानो शृंगारसरोवरमें उत्पन्न सोनेके कमल हों। खिलौनेको हिलता हुआ देखकर वे किलकारी मारते हैं, मानो छबिके छोटे-छोटे बालक खेल-खेलमें लड़ रहे हों। उनके कमलवत नेत्रोंमें अंजन आँजा हुआ है तथा मस्तकपर गोरोचनका तिलक सुशोभित है। मनोहर मुखचन्द्रपर अति सुन्दर काजलकी बिन्दी लगी हुई है। उस मुखमयंकको तुलसीका चित्तरूप चकोर निहार रहा है। [गीतावली]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, जून २०१८ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- 'झूलत राम पालने सोहैं'	३	१६- ईश्वरीय प्रेमकी सार्थकता (श्रीविजयकुमारजी श्रीवास्तव, एम०ए०, डी०पी०एड०, साहित्यालंकार)	२९
२- कल्याण	५	१७- 'सबसों ऊँची प्रेम सगाई' [सूरसागर]	३०
३- पर्वताकार श्रीहनुमान्जी [आवरणचित्र-परिचय]	६	१८- भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा-जगत् का मूलाधार है (आचार्य डॉ० श्री वी०के० अस्थाना)	३१
४- सत्संगकी महिमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७	१९- अपेक्षाएँ अशान्तिको जन्म देती हैं (श्रीबृजमोहनजी गोयल) ..	३३
५- उदारता (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल)	८	२०- हरिकी तरह कीमती कैसे बनें (श्रीसीतारामजी गुप्ता)	३४
६- अल्पमें सुख नहीं है (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ...	११	२१- भगवान्के अवतार लेनेका कारण (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	३५
७- श्रीचैतन्यका महान् त्याग [प्रेरक-प्रसंग]	१३	२२- स्वामी शिवरामकिंकर योगत्रयानन्दजी [सन्त-चरित] (पं० श्रीमहेन्द्रनाथजी भट्टाचार्य)	३७
८- गृह-दीप बुझते जा रहे हैं! (श्रीरामनाथजी 'सुमन')	१४	२३- गोमूत्रका चमत्कार (श्रीभगवतीलालजी हींगड)	३९
९- परिवर्तनशीलके लिये सुख-दुःख क्या मानना [प्रेरक-कथा] ..	१६	२४- साधनोपयोगी पत्र	४०
१०- ज्ञानाग्निसे पापोंका नाश [साधकोंके प्रति] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१७	२५- व्रतोत्सव-पर्व [आषाढ़मासके व्रत-पर्व]	४२
११- लक्ष्मीका वास कहाँ है?	१८	२६- कृपानुभूति	४३
१२- विद्या-प्राप्तिके महत्वपूर्ण सूत्र [एक कल्याणप्रेमी]	१९	२७- पढ़ो, समझो और करो	४४
१३- जीवनमें नया परिवर्तन (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०, पी०एच० डी०)	२२	२८- मनन करने योग्य	४७
१४- परम योग [कहानी] (श्रीसुदर्शन सिंहजी 'चक्र')	२५	२९- कल्याणका आगामी ९३वें वर्ष (सन् २०१९ ई०)-का विशेषाङ्क 'श्रीरामधामधव-अङ्क'	४८
१५- वृद्धावस्था (वैद्य श्रीमोहनलाल गुप्तजी)	२७		

चित्र-सूची

१- पर्वताकार श्रीहनुमान्जी	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- पालनेमें श्रीराम	(")	मुख-पृष्ठ
३- पर्वताकार श्रीहनुमान्जी	(इकरंगा)	६
४- युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें अतिथियोंके चरण पखारते श्रीकृष्ण ..	(")	९
५- गुरुभक्त बालक आरुणि	(")	२०
६- भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते ब्रह्माजी	(")	३६
७- पूतनाकी गोदमें बालक श्रीकृष्ण	(")	३६
८- स्वामी शिवरामकिंकर योगत्रयानन्दजी	(")	३७

एकवर्षीय शुल्क

₹ २५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail }
शुल्क }

वार्षिक US\$ 50 (₹ 3000)
पंचवर्षीय US\$ 250 (₹ 15000)

{ Us Cheque Collection
{ Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क

₹ १२५०

संस्थापक — ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक — राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक — डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org

e-mail : kalyan@gitapress.org

09235400242/244

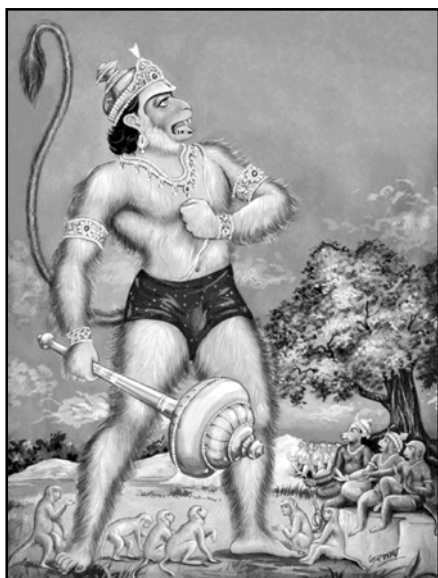
सदस्यता-शुल्क — व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता-शुल्क — भुगतानहेतु-gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

याद रखो—भगवान्‌के समान सदा सब बातोंको जाननेवाला, तुम्हारे दुःख-दर्दके मूलतत्त्वको समझने और उसे मिटानेकी शक्ति रखनेवाला, तुम्हारे सारे अभावोंको जानने और उनकी सर्वांगपूर्ण पूर्ति करनेकी शक्ति रखनेवाला, पुकारते ही उत्तर देनेवाला तुम्हारा परम सुहृद्—सदा हित करनेमें तत्पर अन्य कोई भी नहीं है। तुम भगवान्‌को छोड़कर अन्य किसीमें भी जो तनिक भी विश्वास—भरोसा रखते हो, यही तुम्हारा मोह है—अज्ञान है एवं सारी विपत्तियोंका मूल है। इसे छोड़कर अपने भगवान्‌को पहचानते ही तुम्हारे सारे दुःख-दर्द सदाके लिये नष्ट हो जायँगे और तुम नित्य अनन्त सुख-शान्तिको पाकर कृतार्थ हो जाओगे। **‘शिव’**

पर्वताकार श्रीहनुमान्जी



सीताजीकी खोज करते समय समुद्रको पारकर लंका जाना था, परंतु सभी योद्धाओंने इस विषयमें अपनी असमर्थता प्रकट की। तब ऋक्षपति जाम्बवान्ने हनुमान्जीको उनके बल-पराक्रमका स्मरण दिलाते हुए कहा कि हे पवनपुत्र ! तुम्हारा तो जन्म ही रामकार्यके लिये हुआ है। जाम्बवान्के वचन सुनकर श्रीहनुमान्जी परम प्रसन्न हुए और उन्होंने मानो समस्त ब्रह्माण्डको कम्पायमान करते हुए सिंहनाद किया। उस समय उन्होंने सोनेके विशाल पर्वतके सदृश आकार धारण कर लिया था। वे वानरोंको सम्बोधितकर कहने लगे—‘वानरो ! मैं समुद्रको लाँघकर लंकाको भस्म कर डालूँगा और रावणको उसके कुलसहित मारकर जानकीजीको ले आऊँगा। यदि कहो तो रावणके गलेमें रस्सी डालकर और लंकाको त्रिकूट-पर्वतसहित उखाड़कर भगवान् श्रीरामके चरणोंमें डाल दूँ।’

हनुमान्जीके वचन सुनकर जाम्बवान्ने कहा कि हे वीरोंमें श्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमान् ! तुम्हारा शुभ हो, तुम केवल शुभलक्षणा जानकीजीको जीती-जागती देखकर ही वापस लौट आओ । हे रामभक्त ! तुम्हारा कल्याण हो ।

बड़े-बूढ़े वानरशिरोमणियोंके मुखसे अपनी प्रशंसा
सुनकर हनुमानजीने अपनी पूँछको बारंबार घुमाया और
भगवान् श्रीरामके बलवान स्वभाव वियाहृदयमानजीका रूप

उस समय बड़ा ही उत्तम दिखायी पड़ रहा था।

वे वानरोंके बीचसे उठकर खड़े हो गये। उनके सम्पूर्ण शरीरमें रोमांच हो आया। उस अवस्थामें हनुमान्जीने बड़े-बूढ़े वानरोंको प्रणाम करके इस प्रकार कहा—‘आकाशमें विचरनेवाले वायुदेवका मैं पुत्र हूँ। उनकी शक्तिकी कोई सीमा नहीं है। उनका औरस पुत्र होनेके कारण मेरे अन्दर भी उन्हींकी शक्ति है। अपनी भुजाओंके वेगसे मैं समुद्रको विक्षुब्ध कर सकता हूँ। मुझे निश्चय जान पड़ता है कि मैं विदेहकुमारी जानकीका दर्शन करूँगा। अतः अब तुम लोग आनन्दपूर्वक सारी चिन्ता छोड़कर खशियाँ मनाओ।’

हनुमान्जीकी बातें सुनकर वानर-सेनापति जाम्बवान्को बड़ी प्रसन्नता हुई, वानरोंका शोक जाता रहा। उन्होंने कहा कि हनुमान्! ये सभी श्रेष्ठ वानर तुम्हारे कल्याणकी कामना करते हैं। तुमने अपने बन्धुओंका सारा शोक नष्ट कर दिया। ऋषियोंके प्रसाद, वृद्ध वानरोंकी अनुमति तथा भगवान् श्रीरामकी कृपासे तुम इस महासागरको सहज ही पार कर जाओ। जबतक तुम लौटकर यहाँ आओगे, तब-तक हम तुम्हारी प्रतीक्षामें एक पैरसे खड़े रहेंगे, क्योंकि हम सभी वानरोंके प्राण इस समय तुम्हारे ही अधीन हैं।

इसके बाद छलाँग लगानेके लिये श्रीहनुमान्जी महेन्द्रपर्वतके शिखरपर पहुँच गये। उन्होंने मस्तक और ग्रीवाको ऊँचा किया और बड़े ही वेगसे शरीरको सिकोड़कर महेन्द्रपर्वतके शिखरसे छलाँग लगा दी।

कपिवर हनुमान्जीके चरणोंसे दबकर वह पर्वत काँप उठा और दो घड़ीतक लगातार डगमगाता रहा। आकाशमार्गसे जाते हुए हनुमान्जीने वानरोंसे कहा कि वानरो! यदि मैं जनकनन्दिनी सीताजीको नहीं देखूँगा तो इसी वेगसे स्वर्गमें चला जाऊँगा। यदि मुझे स्वर्गमें भी माँ सीताके दर्शन नहीं हुए तो राक्षसराज रावणको ही बाँध लाऊँगा। ऐसा कहकर हनुमान्जी विघ्न-बाधाओंका बिना कोई विचार किये बड़े ही वेगसे दक्षिण दिशामें आगे बढ़े। हनुमान्जीके वेगसे टूटकर ऊपर उठे वृक्ष उनके पीछे एक मुहूर्ततक ऐसे चले—जैसे राजाके पीछे

सत्संगकी महिमा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज 'सत्संग' का महत्त्व बतलाते हुए कहते हैं—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥
सत्संगके बिना हरि-कथा नहीं मिलती, हरि-कथाके बिना मोहका नाश नहीं होता और मोहका नाश हुए बिना भगवान्‌के चरणोंमें दृढ़ प्रेम नहीं होता।

साधारण प्रेम प्राप्त होनेके तो और भी बहुत-से उपाय हैं, पर दृढ़ प्रेम मोह रहते नहीं होता और दृढ़ प्रेमके बिना भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होती। भगवान्‌ मिलते ही हैं प्रेमसे। श्रीरामचरितमानसके बालकाण्डमें देवताओंके प्रति भगवान्‌ श्रीशिवजीके वचन हैं—

हरि व्यापक सर्वत्र समान। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

‘हरि सब जगह समान भावसे व्याप्त हैं और वे प्रेमसे प्रकट होते हैं।’ इससे यही सिद्ध होता है कि भगवान्‌ प्रेमसे मिलते हैं और प्रेम प्राप्त होता है सत्संगसे। इसलिये मनुष्यको सत्संगके लिये विशेष प्रयत्नशील रहना चाहिये। सत्पुरुषोंका सेवन न मिले तो स्वाध्याय करना चाहिये। सत्-शास्त्रोंका स्वाध्याय भी सत्संगके समान है।

सत्संगके चार प्रकार हैं। पहले नम्बरके सत्संगका अर्थ समझना चाहिये—सत्-परमात्मामें प्रेम। सत् यानी परमात्मा और संग यानी प्रेम। यही सर्वश्रेष्ठ सत्संग है। सत् यानी परमात्माके संग रहना अर्थात् परमात्माका साक्षात् दर्शन करके भक्तका उनके साथ रहना भी सत्संग है। यही सत्पुरुषका संग है; क्योंकि सर्वश्रेष्ठ सत्-पुरुष तो एक भगवान्‌ ही हैं। इनके सामने स्वर्गकी तो बात ही क्या है, मुक्ति भी कोई चीज नहीं है। श्रीतुलसीदासजीने इसी विशेष सत्संगकी बड़े मार्मिक शब्दोंमें महिमा गायी है। वे कहते हैं—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।

तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

हे तात! स्वर्ग और मुक्तिके सुखको तराजूके एक

पलड़ेपर रखा जाय और दूसरे पलड़ेपर क्षणमात्रके सत्संगको रखा जाय तो भी एक क्षणके सत्संगके सुखके समान उन दोनोंका सुख मिलकर भी नहीं होता।

दूसरे नम्बरका सत्संग है—भगवान्‌के प्रेमी भक्तका—सत्-रूप परमात्माको प्राप्त जीवन्मुक्त पुरुषका संग। तीसरे नम्बरका सत्संग है—उन उच्चकोटिके साधक पुरुषोंका संग, जो परमात्माकी प्राप्तिके लिये सतत प्रयत्न कर रहे हैं। चौथे नम्बरका सत्संग उन सत्-शास्त्रोंके स्वाध्यायको कहते हैं, जिनमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचारका विवरण और विवेचन है। ऐसे सत्-शास्त्रोंका सदा प्रेमपूर्वक पठन, मनन और अनुशीलन करनेसे भी सत्संगका ही लाभ प्राप्त होता है।

इनमें सर्वश्रेष्ठ प्रथम नम्बरका सत्संग तो भगवान्‌की कृपासे ही मिलता है। उसीके लिये सारी साधनाएँ की जाती हैं, परन्तु संसारमें महापुरुषोंका—महात्माओंका संग प्राप्त होना भी कोई साधारण बात नहीं है। वह भी बड़े ही सौभाग्यसे मिलता है।

पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥

पुण्यपुंज यानी पूर्वके महान्‌ शुभ संस्कारोंके संग्रहसे ही महापुरुषोंका संग मिलता है। ऐसे सत्संगका फल संसारके आवागमनसे यानी जन्म-मरणसे सर्वथा छूट जाना है। महात्माके संगसे जैसा लाभ होता है, वैसा लाभ संसारके किसी भी प्राणी-पदार्थसे नहीं हो सकता। संसारमें लोग पारसकी प्राप्तिको बड़ा लाभ मानते हैं, परन्तु सत्संगका लाभ तो बहुत ही विलक्षण है। कविकी उक्ति है—

पारस में अरु संतमें बहुत अंतरा जान।

वह पत्थर सोना करे, यह करे आपु समान॥

पारस और संतमें बहुत भेद है, पारस लोहेको सोना बना सकता है; परन्तु पारस नहीं बना सकता, लेकिन संत-महात्मा पुरुष तो संग करनेवालेको अपने समान ही संत-महात्मा बना देते हैं।

यदि कोई मनुष्य अपने-आप गरीबीका अनुभव करता है तो इसकी चिन्तासे मुक्त होनेका उपाय धन-संचय करने लग जाना है। धन-संचयके प्रयत्नसे धनका

युधिष्ठिरके खजानेमें आ जाता था। श्रीकृष्ण सभी

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

अतिथियोंका स्वागत करते समय उनका चरण पखारते थे। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने अपना सम्मान खोया नहीं, वरं और भी बढ़ा लिया। जब राजसभा हुई तो एक शिशुपालको छोड़ सभी राजाओंने श्रीकृष्णको ही सर्वोच्च आसनके लिये प्रस्तावित किया। जो अपने आपको जितना दूसरोंके हितमें लगाता है, वह उसे उतना ही अधिक पाता है और जो अपने मान-अपमानकी परवा नहीं करता, वही संसारमें सबसे अधिक सम्मानित होता है।

स्वार्थभाव मनमें क्षोभ उत्पन्न करता है और उदारताका भाव शील उत्पन्न करता है। यदि हम अपने जीवनकी सफलताको आन्तरिक मानसिक अनुभूतियोंसे मापें तो हम उदार व्यक्तिके जीवनको ही सफल पायेंगे। मनुष्यकी स्थायी सम्पत्ति धन, रूप अथवा यश नहीं है; ये सभी नश्वर हैं। उसकी स्थायी सम्पत्ति उसके विचार ही हैं। जिस व्यक्तिके मनमें जितने अधिक शान्ति, सन्तोष और साम्यभाव लानेवाले विचार आते हैं, वह उतना ही अधिक धनी है। उदार विचार मनुष्यकी वह सम्पत्ति है, जो उसके लिये आपत्तिकालमें सहायक होती है। अपने उदार विचारोंके कारण उसके लिये आपत्तिकाल आपत्तिके रूपमें आता ही नहीं, वह सभी परिस्थितियोंको अपने अनुकूल देखने लगता है।

उदार मनुष्यके मनमें भले विचार अपने-आप ही उत्पन्न होते हैं। इन भले विचारोंके कारण सभी प्रकार की निराशाएँ नष्ट हो जाती हैं और उदार मनुष्य सदा उत्साहपूर्ण रहता है। उदार मनुष्य आशावादी होता है। निराशावाद और अनुदारताका जिस प्रकार सहयोग है, उसी प्रकार उदारताका सहयोग आशावाद और उत्साहसे है। जब मनुष्य अपने-आपमें किसी प्रकारकी निराशाकी वृद्धि होते देखे तो उसे समझना चाहिये कि कहीं-न-कहीं उसके विचारोंमें उदारताकी कमी हो गयी है; अतएव इसके प्रतिकारस्वरूप उसे उदार विचारोंका अभ्यास करना चाहिये। अपने समीप रहनेवाले व्यक्तियोंसे ही इसका प्रारम्भ करे। तब

देखेगा कि थोड़े ही कालमें उसके आसपास दूसरे ही प्रकारका वातावरण उत्पन्न हो गया है। उसके मनमें फिर आशावादी विचार आने लगेंगे। जैसे-जैसे उसका उदारताका अभ्यास बढ़ेगा, उसका उत्साह भी उसी प्रकार बढ़ता जायेगा। इससे यह प्रमाणित होता है कि मनुष्य उदारतासे कुछ खोता नहीं, कुछ-न-कुछ प्राप्त ही करता है।

कितने ही लोग कहा करते हैं कि दूसरे लोग हमारी उदारतासे लाभ उठाते हैं। वास्तवमें वह उदारता उदारता ही नहीं, जिसके लिये पीछे पश्चात्ताप करना पड़े। स्वार्थवश दिखायी गयी उदारताके पीछे ही इस प्रकार पश्चात्ताप होता है। सच्चे हृदयसे दिखायी गयी उदारता कभी भी पश्चात्तापका कारण नहीं होती, उसका परिणाम सदा भला ही होता है। यदि कोई व्यक्ति हमारे उदार स्वभावसे लाभ उठाकर हमें ठगता है तो इससे हमारा आध्यात्मिक पतन नहीं होता, बल्कि लाभ ही होता है। यह आध्यात्मिक लाभ कुछ ही कालमें भौतिक सफलताका रूप धारण कर लेता है। मनुष्यका सांसारिक दिवालियापन उसके आध्यात्मिक दिवालियेपनका परिणाममात्र है। अतएव अपने ठगे जानेका भय व्यर्थ और मूर्खतापूर्ण है। जिस प्रकार दो और दो मिलकर चार ही होते हैं, तीन नहीं होते, उसी प्रकार किसी भी सद्भावनासे प्रेरित कार्यका परिणाम भला ही होता है। वह कदापि बुरा नहीं होता। किसी भी कार्यका दो प्रकारका परिणाम होता है—एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। अपने कार्यका मूल्य बाह्य परिणामसे आँकना एक प्रकारकी नादानी है। शुभ कार्यका बाह्य परिणाम कभी अनुकूल होता है, कभी प्रतिकूल; पर उसका आन्तरिक परिणाम सदा भला ही होता है। यह परिणाम उस कार्यके हेतुमें ही निहित है। भले उद्देश्यसे किया गया कार्य मनमें भलाई ही उत्पन्न करता है और अपने मनको भला बनाना, अपने विचारोंको

Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharm> MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

अल्पमें सुख नहीं है

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

‘यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।’

(छा० उ० ७।२३।१)

श्रुति कहती है—‘अल्पमें सुख नहीं है, जो भूमा—महान् निरतिशय है, वही सुख है।’ इसीलिये जीव चिरकालसे सुखकी खोजमें भटकता है, परंतु कहीं तृप्त नहीं होता। हो भी कैसे? उसने अभीतक अल्पमें ही चक्कर काटे हैं। पूर्णके दरवाजेपर पहुँचे, तब न उसको सुखकी झाँकी नसीब हो। अबतक तो उसने जिस-जिस चीजको सुखका साधन समझकर अपनाया, वह अन्तमें दुःखदायी ही साबित हुई; इसीसे यह अशान्त हुआ जहाँ-तहाँ कराहता, कलपता, बिलखता दौड़ रहा है और बार-बार ठोकरें खा-खाकर गिरता और क्लेश सहता है।

यह बात नहीं कि जीव पूर्णके दरवाजेतक पहुँचनेका अधिकारी नहीं है—वह सच्चा अधिकारी है; परंतु उसने भ्रमसे पूर्णको भूलकर अपूर्णको और अनित्यको पूर्ण और नित्य तथा असत् और दुःखमयको ही सत् और सुखरूप मान लिया है; इसीसे वह इन्हींमें प्रीतिकर, इन्हींमें रमकर, बार-बार मृत्युकी क्लेशकारिणी कराल मूर्तिको देख-देखकर काँपता और रोता है; फिर भी इन्हें छोड़ना नहीं चाहता; यही उसका अज्ञान है, यही अविद्याका जाल है, जिसमें फँसकर उसने अपने स्वरूप और अधिकारको भुला ही दिया है।

इस अविद्याके जालको काटनेकी आवश्यकता है। वेद-शास्त्र, संत-महात्मा इसीके लिये कठोर साधनकी आवश्यकता बतलाते हैं; इसीके लिये साधक शास्त्र और संतोंका संग किया करते हैं, पर शास्त्र और संतोंके संगको तभी सफल समझना चाहिये, जब यह अविद्याका जाल कट जाय, अज्ञानका अन्धकार नष्ट हो जाय। यह अज्ञान ही हमारा परम शत्रु है, जिसने हमें एक होते हुए भी अपने स्वरूप परमात्मासे विलग कर रखा है, मिथ्यामें सत्ता और मोह उत्पन्न कराकर हमें संसृति (संसार)-के प्रवाहमें डाल रखा है। जैसे अन्धकारका नाश प्रकाशसे होता है, अमावस्याकी घोर काली निशा अरुणोदयकी लालिमाको

देखते ही सकुचाकर दुबक जाती है—अपनेको छिपाने लगती है और सूर्यका प्रकाश होते-होते सर्वथा नष्ट भी हो जाती है, वैसे ही यह अज्ञानरूपी तम भी ज्ञानकी विमल और प्रखर ज्योतिसे ही नष्ट होता है। ज्ञानके बिना अज्ञानका नाश कभी सम्भव नहीं, इसलिये मनुष्य-जीवन सर्वप्रथम और सर्वोपरि कर्तव्य ज्ञानको—तत्त्व-ज्ञानको प्राप्त करना है, जिसके मिलते ही सारे दुःख—सम्पूर्ण क्लेश सदाके लिये शान्त हो जाते हैं। यह ज्ञान भगवत्कृपासे प्रेमके रूपमें परिणत होकर बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे, तनमें-मनमें, वाणीमें, बुद्धिमें, बैठनेमें, चलनेमें, सोनेमें, जागनेमें, दृष्टिमें, अदृष्टिमें केवल एक दिव्य सत्य-चेतन आनन्द भर देता है। फिर सब ओर, सर्वदा, सबमें एक दिव्य परमात्म-सत्ता ही छा जाती है; छाया तो वह अब भी है, पर इस समय अज्ञानावृत जीव उसे प्रत्यक्ष नहीं करता, उसका अनुभव नहीं करता है। जब ज्ञानालोकसे अज्ञानान्धकार मिट जाता है, जब जीव और शिवकी एकता हो जाती है, तब फिर बस, पूर्ण ‘सत्यं शिवं सुन्दरम्’ शेष रह जाता है। वह दिशा, काल, मान आदिमें सर्वत्र व्याप्त है। यही नहीं, दिशा, काल, मान आदि सब उसीमें कल्पित हैं। वह एक है, अनुपम है, अपरिमेय है, अनादि है, अनन्त है, नित्य है, सत्य है, ज्ञान है, प्रेम है, परमानन्द है, परम-रसरूप है, अटल है, असीम है, अज है, अकल है, अगम्य है, अनिर्देश्य है, अव्यक्त है और अनिर्वचनीय है। इसीलिये श्रुतियोंने ‘सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म’, ‘प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म’ आदि कहकर भी उसे ‘नेति-नेति’ कहा है; क्योंकि किसी भी शब्दसे, किसी भी बुद्धि-वृत्तिसे उसको व्यक्त नहीं किया जा सकता; उसको बतलानेके लिये जितने नाम, भाव और उदाहरण हैं, वे सभी अपूर्ण हैं और वस्तुतः उसका स्वरूप प्रकाशित नहीं कर सकते, परंतु उसका कुछ बाहरी भाव, उसकी छाया समझमें आ जाय, इसीलिये ‘शाखा-चन्द्र-न्याय*’से इन शब्दोंकी कल्पना की गयी है। शब्द भी तो वही है। आरम्भमें वह शब्द ही बनकर सृष्टिका सूत्रपात करता है। इसलिये शब्दमेंसे होकर ही हम उसके स्वरूपतक पहुँच

* जैसे आकाशमें सुदूरस्थ चन्द्रमाको दिखलानेके लिये किसी पेड़की शाखाके ऊपर उसे देखनेको कहा जाता है।

इस विरहकी दशामें जब प्राण-प्रिय तान-तानकर हृदयमें बाण मराता है, तब तो कुछ विचित्र ही अवस्था हो जाती है। अन्तमें होता यह है कि बाण मारनेवाला ही रह जाता है, जिसके बाण लगता है, उसकी पृथक् सत्ता ही मिट जाती है। इसी दृश्यकी चाहना करते हुए महात्मा दादू पुकारते हैं—

दादू मारे प्रेम सौं बेधे साध सुजाण।
मारणहारे कौं मिलै, दादू बिरही-बाण॥
मारणहारा रहि गया जेहि लागे सो नाहिं।
कबहूँ सो दिन होयगो, यह मेरे मन माहिं॥
विरह-बाण लगनेपर 'वह दिन' आते देर नहीं

लगती, जब भक्त उस प्राणाधार विश्वाधार विश्वात्मा मुरलीमनोहरको जानकर, देखकर और उसके हृदयमें

छिपकर कृतार्थ हो जाता है। बस, यह विरह-ताप, यह अनन्य प्रेम ही उस पूर्ण प्रियतमके मिलनेका सर्वोत्तम साधन है। स्वयं श्रीभगवान् कहते हैं—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(गीता ११।५४)

‘परम तपस्वी अर्जुन! अनन्य भक्तिके द्वारा ही मैं तत्त्वसे जाना जा सकता हूँ, प्रत्यक्ष दर्शन दे सकता हूँ और भक्तका मुझमें प्रवेश हो सकता है।’

बस, यह प्रभु-मिलन ही पूर्णकी प्राप्ति है, यही सुखकी पराकाष्ठा है। अल्पको छोड़कर इसी महान्— पूर्णके लिये, पूर्ण प्रयत्न करना मनुष्यका परम धर्म है।

प्रेरक-प्रसंग—

श्रीचैतन्यका महान् त्याग

श्रीचैतन्य महाप्रभु उन दिनों नवद्वीपमें निमाईके नामसे ही जाने जाते थे। उनकी अवस्था केवल सोलह वर्षकी थी। व्याकरणकी शिक्षा समाप्त करके उन्होंने न्यायशास्त्रका महान् अध्ययन किया और उसपर एक ग्रन्थ भी लिख रहे थे। उनके सहपाठी पं० श्रीरघुनाथजी उन्हीं दिनों न्यायपर अपना ‘दीधिति’ नामक ग्रन्थ लिख रहे थे, जो इस विषयका प्रख्यात ग्रन्थ माना जाता है।

पं० श्रीरघुनाथजीको पता लगा कि निमाई भी न्यायपर कोई ग्रन्थ लिख रहे हैं। उन्होंने उस ग्रन्थको देखनेकी इच्छा प्रकट की। दूसरे दिन निमाई अपना ग्रन्थ साथ ले आये और पाठशालाके मार्गमें जब दोनों साथी नौकापर बैठे तब वहीं निमाई अपना ग्रन्थ सुनाने लगे। उस ग्रन्थको सुननेसे रघुनाथ पण्डितको बड़ा दुःख हुआ। उनके नेत्रोंसे आँसूकी बूँदें टपकने लगीं।

पढ़ते-पढ़ते निमाईने बीचमें सिर उठाया और रघुनाथको रोते देखा तो आश्चर्यसे बोले—‘भैया! तुम रो क्यों रहे हो?’

रघुनाथने सरल भावसे कहा—‘मैं इस अभिलाषासे एक ग्रन्थ लिख रहा था कि वह न्यायशास्त्रका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाय; किंतु मेरी आशा नष्ट हो गयी। तुम्हारे इस ग्रन्थके सम्मुख मेरे ग्रन्थको पूछेगा कौन?’

‘बस, इतनी-सी बातके लिये आप इतने संतप्त हो रहे हैं!’ निमाई तो बालकोंके समान खुलकर हँस पड़े। ‘बहुत बुरी है यह पुस्तक, जिसने मेरे मित्रको इतना कष्ट दिया!’ रघुनाथ कुछ समझें, इससे पूर्व तो निमाईने अपने ग्रन्थको उठाकर गंगाजीमें बहा दिया। उसके पन्ने भगवती भागीरथीकी लहरोंपर बिखरकर तैरने लगे।

रघुनाथके मुखसे दो क्षण तो एक शब्द भी नहीं निकला और फिर वे निमाईके पैरोंपर गिरनेको झुक पड़े; किंतु निमाईकी विशाल भुजाओंने उन्हें रोककर हृदयसे लगा लिया था।

गृह-दीप बुझते जा रहे हैं!

(श्रीरामनाथजी 'सुमन')

हमारे शास्त्रोंने गृहस्थाश्रमको धन्य कहा है— धन्य इसलिये कि वही आश्रम धर्मकी रीढ़ था। उससे अन्य तीनों आश्रमोंको बल मिलता था। वह व्यक्तिमें समष्टि-धर्मकी प्रयोगशाला था। वह सभ्यता और संस्कृतिका मेरुदण्ड था। वह एक ऐसी इकाई था, जिसके गर्भमें अगणित दहाइयाँ अँगड़ाई लेती थीं। वह एक ऐसा दीपक था, जिसमें स्नेह स्वयं जलकर दूसरोंको प्रकाश देता था। मानव-संस्कारोंकी प्रथम रंगस्थली। परंतु आज वह विवर्ण है, अपनेमें खोया और लुटा हुआ।

अनेक मतों, वादों और सिद्धान्तोंके होते हुए भी एक तथ्य हम चतुर्दिक् देख सकते हैं कि आज भी संसारका विशाल बहुमत विवाहित जीवन व्यतीत करनेवाला है। असाधारण वृत्तिके बुरे-भले आदमियोंको छोड़कर विचार करें तो ज्ञात होगा कि यह मानव-जीवनका एक सामान्य और प्रायः निश्चित-सा कार्य बन गया है। यह जीवनका एक सत्य है।

क्यों है यह जीवनका सत्य? इसलिये कि वह जीवनका कवच है। वह हमें अनेक बुराइयोंसे बचा लेता है, जीवनके युद्धमें हमें शक्ति देता है—मेरा प्रयोजन यह है कि बचा सकता है, शक्ति दे सकता है। जब हमारा मन अगणित उत्तेजनाओंसे थक जाता है, तब वह हमें थपकियाँ देकर शान्त कर देता है। जब हम वासनाओंसे प्रकम्पित होते हैं, यह हमारे चरण पकड़ लेता है। इसके कारण हजारों अकर्मण्य जीवनके वीर सैनिक बन गये हैं, लाखों मानसिक संतुलन खोनेसे बच गये हैं। इसने उच्छृंखल यौन अतिचारोंपर अंकुश रखा है, इसने जीवनके लुब्धक मिथ्याचारोंमें डूबनेसे हमें रोक लिया है।

आजके संघर्षसे भरे जीवनमें, जब हमारे चतुर्दिक् ईर्ष्या-द्वेष-दम्भका बवंडर उठ रहा है, जब हमारी सूनी कातर आँखें करुणाके सुखद स्पर्शके लिये व्याकुल हैं, जब मित्रोंकी पहचान करना कठिन हो रहा है, जब जातीयवादीयोजना काठिनडूजय

पग-पगपर निराश और अप्रतिभ होता है—खीझता है, जब उसके साहसके पाँव उखड़ जाते हैं और आकांक्षाएँ दम तोड़ देती हैं, तब कुछ ही क्षणके लिये सही, जहाँ तप्त बालुका-भूमिमें शीतल जलकी फुहार मिल जाती है, दो मधुर बोल और तुम्हारे दुःख-कष्ट एवं चिन्ताको तुमसे छीन लेनेकी उत्कण्ठा जहाँ है, वह घर ही है। अपनी समस्त विवशताओंके साथ भी, यान्त्रिक सभ्यता, संघर्ष और आर्थिक दुष्प्रेरणाओंसे दिन-दिन टूटते घर आज भी पृथ्वीपर स्वर्ग हैं।

जीवन-युद्धमें थके, संध्याके समय लौटते हुए अपनेको देखो। आज काम ज्यादा करना पड़ा, दम मारनेकी फुर्सत न मिली, फाइलमें एक गलती हो गयी, साहबकी डाँट पड़ी, मन खट्टा हो गया। कारखानेमें आज साथीके न आनेसे काम इतना करना पड़ा कि शरीर चूर है; दूकानपर आज सेठसे कहा-सुनी हो गयी है, या आज शरीर थका-थका-सा और मन बोझिल है। पग रास्ता नहीं काटते, लगता है, रास्ता ही पगोंको काटता हो; साहस और उमंग सो गये; चित्त भ्रान्त, अशान्त है; दिल बैठा-बैठा-सा लगता है। परंतु लौटना है, और लौट रहे हो घरकी ओर।

और एक नारी, जिसके जीवनकी समस्त उमंगें, समस्त आशाएँ तुममें ही सिमटकर रह गयी हैं—तुम्हारी थकावटको अनुभव करनेवाली, स्वयं गृहकार्योंमें थका होकर भी, द्वारपर तुम्हारी प्रतीक्षामें दो अबोले, तुम्हारे स्नेहमें उमड़े, नयन बिछाये खड़ी है। तुम्हारे दृग् मिलते हैं, और हृदय, टूटता हृदय फिर उभरता है; निराशापर मौन प्यारकी एक थपकी जीवनको टूटनेसे बचा लेती है। जब दुनियामें और कोई तुम्हारा नहीं है, तब भी वह है—यह भावना पुरुषमें विद्युत्की भाँति कौंधकर उसे पुनः शक्तिसे पूरित कर देती है। कोई तुम्हारी राह देखनेवाला है, तुम्हीमें समाया हुआ—यह भावना जीवनके समस्त विषयपर उसकी भाँति छा जाता है। जीवनकी

आगे बढ़ानेकी प्रेरणासे मन-प्राण पूरित हो उठते हैं।

 $\times \qquad \qquad \qquad \times \qquad \qquad \qquad \times$

तुम कहोगे, इस भावुकताके वर्णनसे दुनिया नहीं चलती; यह कविताकी भाषा है, जीवनके कठोर तथ्योंकी नहीं। मैं मानता हूँ, गृहस्थ-जीवनमें भी शत-शत वृश्चिक-दंशोंवाली जिह्वा मिलती है; फूलोंका कलेजा मसलनेवाले तुषारपात भी वहाँ होते हैं; जब हम वर्षाकी आशा कर रहे होते हैं तो सूखा पड़ जाता है और जब हलकी चाँदनीमें मन विभोर हो रहा होता है, तब भयानक कड़कड़ाहट होती है, उल्कापात होते हैं और तूफानोंसे जीवनका क्षितिज भर जाता है। परंतु ये बातें तो गृहस्थ-जीवनके बाहर भी होती हैं। अविवाहित सम्बन्धोंमें इनका अनुपात कुछ अधिक ही होता है। वहाँ भी कल्पनाओं और स्वप्नोंकी छाती फट जाती है और गहरी खाइयाँ दिलोंके बीच एकाएक निकल आती हैं। सामान्य विवाहित गृहजीवनमें ऐसे आकस्मिक उल्कापात कम ही होते हैं।

गृहजीवनका अपना सिरदर्द भी अवश्य है। यह औसत मानवी भावनाओं एवं प्रेरणाओंका जीवन है; यह ब्यौरेका, तफसीलका जीवन है। यह सब मैं मानता हूँ; किंतु यही उसका सौन्दर्य भी है—यह सरलता, यह हृदयकी भाषा, जहाँ घुमाव नहीं है; अटपटे, तरल शब्द सीधे दिलसे ओठोंपर आनेवाले,—अगणित प्रसाधनोंका माध्यम जहाँ उन्हें बीचमें ही लोक नहीं लेता। तुम्हारी गरीबी यहाँ घृणास्पद नहीं है; तुम्हारा धन नहीं, धनी यहाँ काम्य है; कोरे हाथ नहीं, अबोली भावनाएँ, स्नेहके शत-शत अदृश्य वरदान आँखोंमें लिये अन्नपूर्णा यहाँ तुम्हारा स्वागत करती है। चांचल्य, विच्छिन्नता, मृगजलकी भ्रमपूर्ण प्रलुब्धता, रहस्यमयी क्षणिक मादकता यहाँ नहीं है।

मैं जानता हूँ आजका मानव मादकता चाहता है। संघर्षमें मदिरा उसे खींचती है और अपने आँचलके चंचल आन्दोलनोंसे थपकियाँ देकर उसे सुला देती है। तुम सोते हो, क्षणभरके लिये अपनेको भूल जाते हो। परंतु क्या यह जीवनके प्रश्नों और समस्याओंका समाधान है ? क्या यह उनसे और इसीलिये अपनेसे भी भागना नहीं है ? मदिरा अपनी मूल्यवान् वेषभूषामें, कीमती टेबलोंपर,

कीमती और रंगीन पात्रोंमें तुम्हें लुभा ले, क्षणभरको अचेत कर दे; किंतु शीतल, सुखद और बेदाम जलके बिना—जिसे ठीक ही देववाणीमें ‘जीवन’ कहा गया है—आदमी कब जी पाया है ? वही अमृत, वही जीवन, जिसकी कुछ शीतल बूँदोंके छींटे बेहोश मानवको चैतन्य कर देते हैं, तुम्हें यहाँ मिलेगा। किंतु इसके लिये जरा गहराईमें पैठना होगा। अरे, आँखें बन्द करके चलनेवाले मानव ! प्रेमकी योगिनी, सतत आत्मदानसे विश्वको ऊर्जस्वल करनेवाली, अन्नपूर्णा—सी इस गृहकी नारीको देख। महामायाका, जगदम्बाका घर-घरमें प्राप्त अवतरण !

इसीलिये कह रहा था कि गृहस्थ-जीवन पृथ्वीका स्वर्ग है। किंतु आज? वह नरक बनता जा रहा है। क्यों?

इसलिये कि पति और पत्नी, पुरुष और स्त्री, जो मिलकर घरका निर्माण करते हैं, आजके भोगप्रधान जीवनकी आँधियोंमें पड़कर असाधारणरूपसे चंचल और विकृत होते जा रहे हैं। पुरुष है कि नारीके वास्तविक महत्त्वको, उसके विराट् रूपको भूल गया है। वह उस वरदानका रहस्य समझनेकी मानसिक स्थितिमें नहीं है, जो नारी अपने साथ उसके लिये, उसकी संततिके लिये लाती है। वह उसे केवल शरीर-तुष्टिका साधन बनाता जा रहा है। उसके पास दृष्टि नहीं, प्रेरणा नहीं और शायद समय एवं मनःस्थिति भी नहीं कि गहरी सहानुभूतियों एवं निजत्वसे भरे उसके विराट् अन्तर्मनको स्पर्श करे; रससे भरे मनको, जो सहानुभूतिके एक स्पर्शसे द्रवित हो उठता है और पारिजातकी भाँति अपने जीवन-पुष्पको चरणोंमें उँडेल देता है। इसका परिणाम यह है कि शरीरकी तुष्टि भी नहीं हो पाती। यान्त्रिक मिलनमात्र होकर रह जाता है। दोनों अतृप्त, खोये, खीझ-से भरे रह जाते हैं।

उधर नारी अन्तरमें पुरुषके प्रति प्राकृतिक जातीय संवेदनाओंसे भरी, किंतु परम्परासे भयत्रस्त, शिक्षासे या तो गतानुगतिक अथवा फिर मिथ्या दम्भ और विद्वेषसे विकृत अनिश्चितता और शंकाओंके झंझावातमें अस्थिर है। आत्मदानकी प्रेरणा अशक्त हो गयी है और पानेकी आकांक्षा बढ़ी हुई है। स्वभावतः आजके भयंकर जीवन-संघर्षमें, आर्थिक अवपीडनके इस युगमें उसमें निराशाएँ उत्पन्न

दुःख तो यह है कि शताब्दियोंकी अपनी साधनामें नारीने जो दीप गृह-प्रकोष्ठमें जलाये थे—तिमिरावरणको चुनौती देनेवाले दीपक, तुलसीके चौरपर रखनेके लिये अंचलकी छायामें ले जाये जा रहे दीपक, देवार्चनके लिये जल रहे घृतके दीपक और सबके ऊपर आँधीमें, पानीमें, दुःखमें, सुखमें आमरण जलनेवाले स्नेहके दीपक बुझते जा रहे हैं—एक-एक करके बुझते जा रहे हैं। मरणका अन्धकार जीवनको निगलता जा रहा है और हमारे दीपक बुझते जा रहे हैं; क्षितिजपर आँधियाँ उमड़ती आ रही हैं और हमारे दीपक बुझते जा रहे हैं, पतनकी खाइयाँ मुँह बाये हमारी ओर दौड़ी आ रही हैं और हमारे दीपक बुझते जा रहे हैं—गृहके दीपक, स्नेहके दीपक, निष्ठाके दीपक, श्रद्धाके दीपक, अर्चनाके दीपक, साधना और शीलके दीपक!

राजाने शान्त स्थिर भावसे कहा—‘भाई! जो पहले नहीं थी और आगे भी नहीं रहेगी, उस परिवर्तनशील अवस्थाके लिये उल्लास क्या और खेद भी क्यों।’

ज्ञानाग्निसे पापोंका नाश

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

जैसे दहकती हुई अग्नि सम्पूर्ण काष्ठोंको जलाकर राख (भस्ममय) कर देती है, ऐसे ही 'ज्ञानाग्नि' (ज्ञानरूपी अग्नि) अनन्त जन्मोंके शुभाशुभ कर्मोंको जलाकर भस्म कर देती हैं—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥

(गीता ४।३७)

‘सर्व’ शब्दका अर्थ है, पूर्ण रीतिसे। काष्ठके जल जानेपर राख और कोयला रह जाते हैं; परंतु कर्मोंके भस्म होनेपर उनका कुछ भी शेष नहीं रह जाता। यह ज्ञानका माहात्म्य है। इससे सिद्ध है कि महान् पापी भी उस तत्त्वको पा सकते हैं और उनके सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है। फिर साधकको उस तत्त्वकी प्राप्ति हो जाय, इसमें सन्देह करना ही भूल है, अर्थात् उस तत्त्वकी प्राप्तिके विषयमें हमें कभी निराश नहीं होना चाहिये।

इस सम्बन्धमें गीता एक विलक्षण बात कहती है कि 'केवल उस तत्त्वको प्राप्त करना है' (१।३०) — ऐसा पक्का निश्चय करते ही उसी क्षण मनुष्य धर्मात्मा बन जाता है और महान् शान्तिको प्राप्त हो जाता है—

‘क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

(गीता ९।३१)

‘वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परमशान्तिको प्राप्त होता है।’

संसारमें अधिक लोगोंकी धारणा यह रहती है कि हमें तो संसारके कार्य करने हैं। दूसरे ऐसे भी मनुष्य हैं, जो कहते हैं कि हमें संसारके कामके साथ-साथ भजन भी करना है। उनके मनमें यह बात बसी रहती है कि घरका काम है, कुटुम्बका काम है, यह काम है, वह काम है। ऐसे व्यक्ति भजन-सत्संगको गौण मानते हैं और संसारका काम 'करना है ही'—आवश्यक मानते हैं। वास्तवमें संसारके कार्यको अनिवार्य मानना सर्वथा भ्रम, धोखा और विश्वासघात है। भगवान् ने मानव-शरीर दिया है कल्याण करनेके लिये और यह लगाया गया संग्रह एवं भोगोंमें। इस प्रकार भगवान् के साथ भी हम मानव (मनस्वी) होकर भी कैसा विश्वासघात कर रहे हैं!

नीतिमें आता है—

शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्।

लक्षं विहाय दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत् ॥

सौ काम छोड़कर मनुष्यको चाहिये कि भोजन कर

ले। हजार काम छोड़कर स्नान कर लेना चाहिये और दान देनेका सुअवसर आ जाय तो दूसरे लाखों काम बिगड़ते हों तो भी उनकी परवा न करके दानका कार्य प्रथम करे। अन्तमें कहा कि करोड़ों काम बिगड़ रहे हों तो कोई बात नहीं, परंतु भगवान्‌का स्मरण पहले होना चाहिये; क्योंकि संसारका काम सुधर गया तो भी बिगड़ गया और बिगड़ गया तो भी बिगड़ गया। कारण कि अन्तमें बिगड़नेवाला ही है और अपने साथ रहनेवाला भी नहीं है। भजनके समान दूसरा कोई काम नहीं है। शास्त्र और संतोंके वचन तो बहुत श्रेष्ठ होते हैं, परंतु नीतिशास्त्र भी कहते हैं कि सबसे पहले करनेका कार्य हरिभजन है। भजनके बाद समय मिलेगा तो दूसरे कामोंके विषयमें विचार करेंगे। तत्त्वप्राप्तिका काम तो कर ही लेना है। जैसे भी, जब भी अर्थात् चाहे दुःख, संताप, जलन, तिरस्कार, अपमान, निन्दा हो और चाहे दरिद्रता, विपत्ति आती हो—ये सब स्वीकार हैं; परंतु उस तत्त्वप्राप्तिमें देरी न होनी चाहिये। यदि मनुष्य भगवान्‌के लिये पूरी शक्ति लगा देता है तो भगवान् मनुष्यके लिये पूरी शक्ति लगा देते हैं। फिर देरीका क्या काम? क्योंकि भगवत्भक्ति अपार-अनन्त है। श्रीभगवान् कहते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

(गीता ४।११)

‘जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजता है, मैं भी उसको उसी प्रकार भजता हूँ’ फिर भी प्राणी पूरी शक्ति लगाते नहीं। जीव सभी प्रकारकी साधन-सामग्रीसे सम्पन्न है, तत्त्वप्राप्तिका अधिकार भी पूरा है और उसकी प्राप्तिके लिये सभी सबल हैं, जबकि सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्तिके लिये उपर्युक्त नियम नहीं है; क्योंकि संसारकी वस्तुएँ सबको पूरी नहीं मिली हैं। अगर किन्हींको कुछ मिली भी हैं तो वे थोड़े लोग हैं। किंतु भगवान् सबको प्राप्तव्य हैं—

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥

‘बहुत से भक्त उपर्युक्त ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त हो चुके हैं।’ सब लोग लखपति, करोड़पति नहीं बन सकते। अरबपति तो बहुत थोड़े ही बनेंगे; किंतु आध्यात्मिक क्षेत्रमें सब-के-सब **‘सर्वतः पति’** बनेंगे। कोई किंचिन्मात्र भी कम नहीं रहेगा। ब्रह्माजी, शुकदेवजी, शंकरजी, वसिष्ठजी, सनकादिक और नारदादिकोंको जो ज्ञान प्राप्त है, वही ज्ञान आज भी हमें प्राप्त हो सकता है।

ऐसा उत्तम अवसर पाकर भी हम उसे व्यर्थ नष्ट कर रहे हैं, यही बड़ा धोखा है। हमारा यह कैसा अविवेक है ? जो नरतन पाकर प्रभुकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील नहीं होते वे आत्मघाती, मन्दमति, महामूढ़ हैं।

सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ ॥

इसलिये उस तत्त्वको प्राप्त करना है; और करना है
इच्छामात्रसे। चाहे जो हो, उसको प्राप्त करना ही है।
ऐसी पक्की इच्छामात्रकी आवश्यकता है। उस सतुतत्त्वकी

प्राप्तिमें अन्य किसीको हेतु मानना कि गुरु नहीं मिलता, उपाय नहीं मिलता, भगवान्की कृपा नहीं मिलती—ये सब व्यर्थकी बातें हैं। अच्छे-से-अच्छे गुरु आज भी तैयार हैं। भगवान्की कृपा तो सदैव अखण्डरूपसे है ही। प्रकृति सहायता देनेको तैयार है। आपका दृढ़ निश्चय होनेपर कोई बाधा देनेवाला नहीं है। उस तत्त्वकी प्राप्तिके लिये वैर रखनेवाले, प्रेम रखनेवाले और उदासीन रहनेवाले सब-के-सब सहायक होंगे। इनमें भी दुःख देनेवाले इस कार्यमें प्रथम श्रेणीके सहायक होंगे।

यदि हम सत्-पदार्थको प्राप्त नहीं कर सकते तो असत्को क्या प्राप्त करेंगे ? क्योंकि—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।

अभाव कहते हैं (संसारके पदार्थरूपको), जो हैं ही नहीं, अतः उसमें मुख्य अभाव ही है। भाव (परमात्मा) अनुभवमें न आयें तो भी है और अनुभवमें आ जायँ तो भी है। केवल सत्के अनुभवकी जिज्ञासा एवं असत्में सुख-भोग-वृद्धिका त्याग करना है।

लक्ष्मीका वास कहाँ है ?

एक सेठ रात्रिमें सो रहे थे। स्वप्नमें उन्होंने देखा कि लक्ष्मीजी कह रही हैं—‘सेठ! अब तेरा पुण्य समाप्त हो गया है, इसलिये तेरे घरसे मैं थोड़े दिनोंमें चली जाऊँगी। तुझे मुझसे जो माँगना हो, वह माँग ले।’

सेठने कहा—‘कल सबेरे अपने कुटुम्बके लोगोंसे सलाह करके जो माँगना होगा, माँग लूँगा।’

सबेरा हुआ। सेठने स्वप्नकी बात कही। परिवारके लोगोंमेंसे किसीने हीरा-मोती आदि माँगनेको कहा, किसीने स्वर्णराशि माँगनेकी सलाह दी, कोई अन्न माँगनेके पक्षमें था और कोई वाहन या भवन। सबसे अन्तमें सेठकी छोटी बहू बोली—‘पिताजी! जब लक्ष्मीजीको जाना ही है तो ये वस्तुएँ मिलनेपर भी टिकेंगी कैसे? आप इन्हें माँगेंगे, तो भी ये मिलेंगी नहीं। आप तो माँगिये कि कुटुम्बमें प्रेम बना रहे। कुटुम्बमें सब लोगोंमें परस्पर प्रीति रहेगी तो विपत्तिके दिन भी सरलतासे कट जायँगे।’

सेठको छोटी बहूकी बात पसन्द आयी। दूसरी रात्रिमें स्वप्नमें उन्हें फिर लक्ष्मीजीके दर्शन हुए। सेठने प्रार्थना की—‘देवि! आप जाना ही चाहती हैं तो प्रसन्नतासे जायँ; किंतु यह वरदान दें कि हमारे कुटुम्बियोंमें परस्पर प्रेम बना रहे।’

लक्ष्मीजी बोलीं—‘सेठ! ऐसा वरदान तुमने माँगा कि मुझे बाँध ही लिया। जिस परिवारके सदस्योंमें परस्पर प्रीति है, वहाँसे मैं जा कैसे सकती हूँ।’

गुरवो यत्र पूज्यन्ते यत्राह्वानं सुसंस्कृतम् । अदन्तकलहो यत्र तत्र शक्र वसाम्यहम् ॥

देवी लक्ष्मीने इन्द्रसे कहा है—‘इन्द्र! जिस घरमें गुरुजनोंका सत्कार होता है, दूसरोंके साथ जहाँ सभ्यतापूर्वक बात की जाती है और जहाँ मुखसे बोलकर कोई कलह नहीं करता (दूसरेके प्रति मनमें क्रोध आनेपर भी जहाँ लोग चुप ही रह जाते हैं) मैं वहीं रहती हूँ।’

विद्या-प्राप्तिके महत्त्वपूर्ण सूत्र

[एक कल्याणप्रेमी]

विद्यासे अमृत-तत्त्वकी प्राप्ति होती है—‘विद्ययाऽ-मृतमश्नुते।’ (शुक्लयजु० ४०।१४, ईशोप० १।११, मनु० १२।१०३)। इसीलिये विद्याका मुख्य फल विमुक्ति—अज्ञानसे मुक्ति है। कहा भी गया है—‘सा विद्या या विमुक्तये’ (विष्णुपुराण १।१९।४१), किंतु विद्या-प्राप्तिके लिये भले ही वह लौकिक विद्या ही क्यों न हो, शिक्षा-संस्थाओंमें प्रवेश प्राप्त कर लेनामात्र ही पर्याप्त नहीं है; उसके लिये महापुरुषोंद्वारा निर्दिष्ट कुछ विशेष नियमोंका पालन करना भी आवश्यक है। विद्या-प्राप्तिके तीन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूत्र हैं—श्रद्धा, तत्परता, एवं संयतेन्द्रियता। विद्यार्थियोंके लिये ये तीनों सूत्र सफलताके परम साधन हैं। इन साधनोंको अपनानेपर विद्यार्थियोंके हृदयमें विद्या स्वयं स्फुरित होती है। पहला सूत्र है—श्रद्धा। गुरुके प्रति पूज्यता एवं उत्तमताका भाव एवं विश्वास होना ही ‘श्रद्धा’ है। गुरुके प्रति विद्यार्थीका श्रद्धावान् होना आवश्यक है। श्रद्धावान् विद्यार्थीमें विनय, सेवापरायणता एवं सहिष्णुता आदि गुण होते हैं। श्रद्धावान् विद्यार्थी गुरुके प्रति कभी तनिक भी रूक्ष व्यवहार नहीं करता, उसकी जिज्ञासा सदैव विनययुक्त होती है। वह गुरुको नित्य प्रणाम करता है एवं उनकी सेवा करनेमें अधिक रुचि रखता है।

दूसरा सूत्र है—तत्परता। तत्परताका तात्पर्य है—लगन एवं परिश्रम। श्रद्धाके साथ-साथ विद्या सीखनेकी लगन एवं उसके लिये परिश्रम करना भी नितान्त आवश्यक है। अन्यथा श्रद्धाके नामपर शिथिलता, आलस्य एवं अकर्मण्यता आ जानेका भय रहेगा। तीसरा सूत्र है—संयतेन्द्रियता। संयतेन्द्रियताका अर्थ है मन एवं इन्द्रियोंको वशमें रखना। उनकी विषयोंसे विरक्ति हुए बिना श्रद्धा एवं तत्परता दोनों ही न तो पनप ही सकती हैं और न स्थायी ही रह सकती हैं। चंचल मन, इन्द्रिय एवं चित्तसे ज्ञान वैसे ही निकल जाता है, जैसे भिश्तीके पेटसे जल—

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।

तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दूतेः पादादिवोदकम्॥

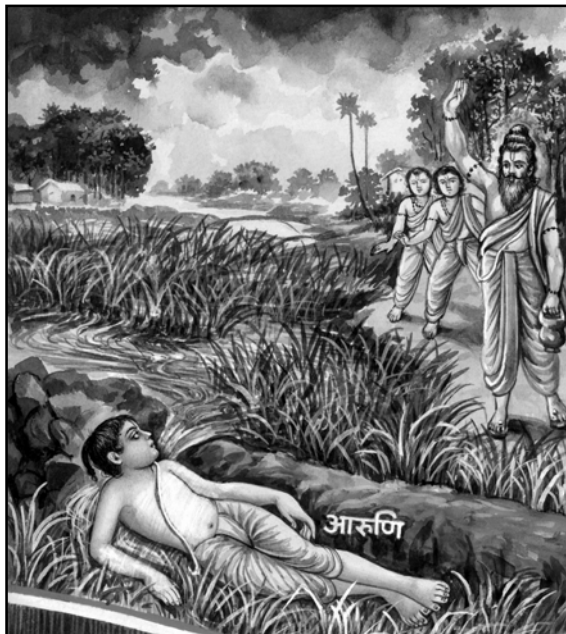
(मनु० २।९९)

प्राचीन कालमें अधिकांश विद्यार्थियोंमें संयमादि गुण विद्यमान रहते थे। इसी कारण उस समयके विद्यार्थी मेधावी होते थे। उस समय संयतेन्द्रियता विद्यार्थियोंमें सहज ही पायी जाती थी। विद्याध्ययनके समय वे लोग ब्रह्मचर्यपूर्वक रहते थे। खान-पानका पूरा संयम रहता था। मनको चंचल करनेवाले पदार्थोंसे बिलकुल परहेज किया जाता था। विद्यार्थियोंका जीवन त्यागमय होता था। उनका जीवन श्रद्धामय होता था और उनका लक्ष्य विशुद्ध ज्ञान होता था। भगवद्भक्त गुरुजन विद्यार्थियोंमें दृढ़ता लानेके लिये उनकी परीक्षा लिया करते थे और कभी-कभी उनके साथ कठोरता भी बरतते थे, परंतु उन दिनों आस्तिक विद्यार्थीवर्ग सहनशील होता था, कठोरताकी कसौटीपर वह खरा उतरता था।

एकलव्य, उपमन्यु, आरुणि इत्यादि अब भी अपनी गुरुनिष्ठाके लिये स्मरणीय हैं। बालक आरुणिमें श्रद्धा, तत्परता एवं संयतेन्द्रियताकी पराकाष्ठा थी। गुरुवर धौम्यकी आज्ञा ही उसका जीवन था। वर्षाकालमें गुरुजीके खेतकी मेंड़ टूट गयी थी। यदि खेतकी मेंड़ ठीक करके बाँधको पक्का न किया जाता तो खेतीके नष्ट होनेकी पूर्ण आशंका थी। गुरुजी चिन्तित हो उठे। बालक आरुणि इसे कैसे सहन कर सकता था? गुरुवरकी आज्ञा मिली और वह खेतकी मेंड़ ठीक करनेको तैयार हो गया। आरुणिके पहुँचते-पहुँचते खेतका बाँध टूट चुका था। वर्षा तेजीसे हो रही थी। अब बेचारा अकेला आरुणि क्या करता? एक ओर खेतके बाँध ठीक करनेकी गुरुआज्ञा थी और दूसरी ओर थी वर्षा एवं ठंड। कोई मार्ग न देखकर अन्तमें आरुणि स्वयं ही खेतकी मेंड़ बनकर लेट गये। खेतमें पानी जाना बन्द हो गया; परंतु ठंड एवं वर्षाके पानीसे वे मूर्च्छित—

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

से हो गये। रात्रि बीती, दूसरा दिन आया, आरुणि खेतकी मेंड़ ठीक करके नहीं लौटे। अध्ययनकालमें आरुणिको अनुपस्थित देखकर गुरुजी चिन्तित हो उठे।



आरुणि बेटा! आरुणि बेटा! पुकारते-पुकारते गुरुजी खेतमें जा पहुँचे। पानीसे सर्वथा मूर्च्छित अवस्थामें खेतकी मेंड़ बने आरुणिको देखकर गुरुजी अपने आँसू रोक न सके। उन्होंने आरुणिको उठाकर हृदयसे लगा लिया और आश्रममें आये। उपचारसे आरुणि होशमें आये। ‘बेटा! अब तुम्हें अध्ययनकी आवश्यकता नहीं है! तुम्हें बिना अध्ययन किये ही विद्याएँ प्राप्त हो जायँगी।’ गद्गदकण्ठसे गुरुजीने आशीर्वाद दिया। गुरुजीके आशीर्वादसे आरुणिको सचमुच बिना पढ़े ही समस्त विद्याओंका ज्ञान हो गया और वे वेदके पारंगत विद्वान् हुए। यद्यपि आजका छात्र विद्याध्ययन एवं गुरु-सेवाका समन्वय नहीं कर पाता है, परंतु ये उदाहरण असत्य नहीं हैं। आरुणिने उपर्युक्त तीनों सूत्रोंसे ही समस्त विद्याएँ प्राप्त कर ली थीं।

अभी इस युगकी भी एक ऐसी ही घटना है। उस समय भारतपर अंग्रेजोंका शासन था और कलकत्ता भारतकी राजधानी थी। आज विश्वमें रायल सोसाइटी तथा एशियाटिक सोसाइटी नामकी विज्ञान-विद्याकी

शाखाएँ सर्वत्र व्याप्त हैं। सन् १७७२ ई० में सर विलियम जोन्स लंदनकी रायल सोसाइटीके फेलो बने। फिर १७८०में उन्होंने स्वयं वैट्रिवियामें एक एशियाटिक सोसाइटीकी स्थापना की और १७८४ में इन्हीं जोन्स साहबने कलकत्तामें एशियाटिक सोसाइटीकी स्थापना की। लार्ड टीनमाउथने इनकी जीवनी छः जिल्दोंमें विस्तारसे लिखी है। विलियम साहब भारतकी विद्याओंकी गुणगाथाएँ सुनकर इसके साहित्यसे बहुत प्रभावित हुए। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि यदि विश्वको कोई अमूल्य ज्ञान-सम्पदा दे सकता है तो वह भारतवर्ष ही है। भारतवर्षके साहित्य, अध्यात्म, जीवन-दर्शन सभी आदर्श हैं। अतः इनका अध्ययन आवश्यक था। वे उन दिनों विश्वकी १२ प्रमुख भाषाओंके जानकार विद्वान् थे। १७७१ई० में इनका पर्शियन ग्रामर प्रकाशित हुआ। अब वे प्राच्य ज्ञान एवं संस्कृत भाषाकी जानकारीके लिये भारत आना चाहते थे। अन्तमें वे उन दिनों कलकत्तास्थित भारतके सुप्रीमकोर्टके न्यायाधीश बनकर भारत आये।

उस समय भारतका सम्पूर्ण ज्ञान देवभाषा संस्कृतमें ही था। अन्य भारतीय भाषाओंमें पुस्तकें नगण्य—सी थीं। संस्कृत ही विश्वकी सबसे पुरातन समृद्ध भाषा है। सर विलियम जोन्सको संस्कृत भाषाका ज्ञान प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छा हुई और चार्ल्स विल्किन्सनसे उन्हें इसकी जानकारीमें पर्याप्त सहयोग मिला। फिर उनकी मित्रता कलकत्ताके कृष्णनगरके महाराजा श्रीशिवचन्द्रसे हुई। उनकी संस्कृत-ज्ञानकी अभिलाषा तीव्र थी और उन्होंने अपने मित्र राजा साहबके सम्मुख यह इच्छा व्यक्त की। कहते हैं—राजा साहब उनके लिये किसी संस्कृत विद्वान्की खोज करने लगे, जो उन्हें संस्कृत पढ़ा सकते। उस समयके संस्कृतके विद्वान् लोग विदेशियोंके सम्पर्कमें आनेमें अरुचि रखते थे, उन्हें उनके संगसे समाजकी भर्त्सनाका भय था। अतः कोई भी विद्वान् सर विलियम जोन्सको संस्कृतकी शिक्षा देनेके लिये राजी नहीं हो रहा था। राजा साहबके बहुत चेष्टा करनेपर अन्तमें कविभूषण श्रीरामलोचनजी इस कार्यके लिये राजी हुए। उन्होंने सर

पाश्चात्य जगत् इसपर मुग्ध हो गया। सुतरां सर विलियम जोन्सकी सफलतामें अनेक गुणोंमें उपर्युक्त तीनों सूत्र ही मुख्य थे।

कविभूषणजीने सर्वप्रथम सर विलियम जोन्सको भारतीय विद्यार्थियोंकी गरिमा एवं श्रद्धा, तत्परता और संयतेन्द्रियताकी महिमासे अवगत कराया। सर विलियम जोन्सने भारतीय विद्यार्थियोंके ढंगको अपनाया। उन्हें तो संस्कृतका ज्ञान प्राप्त करनेकी तीव्र लालसा थी। उन्होंने अपनी कोठीके नीचेका कमरा बिलकुल भारतीय ढंगसे बनवाया। उस कमरेमें गुरुवर कविभूषणजीके लिये एक उच्च आसन लगवाया गया एवं सर विलियमने अपने लिये गुरुजीसे नीचे फर्शपर आसन लगाया। कमरा नित्य गंगाजलसे धोकर पवित्र किया जाता था। सर जोन्समें अपने गुरुजीके प्रति पूर्णरूपसे श्रद्धा थी। वे उनका पूर्णरूपसे आदर करते थे। उन्हें नित्य प्रणाम करते और समय-समयपर उनकी सेवा करनेको तैयार रहते थे। इनकी विद्याध्ययनकी लगन ऐसी थी कि वे अपने गुरुजीके संकेतमात्रसे पाठ समझनेकी चेष्टा करते। अपना पाठ सीखनेमें विलियम साहबने लगन एवं परिश्रममें किसी प्रकारकी कमी न रखी। इतना ही नहीं, संयतेन्द्रियताके लिये सर विलियम जोन्सने अभक्ष्य वस्तुएँ तथा मदिरा आदिका भी सर्वथा त्याग कर दिया था। वे प्रातःकाल केवल थोड़ी-सी चाय लेकर अध्ययनमें लग जाते थे। इन्हीं कारणोंसे गुरुजीके आशीर्वादसे सर विलियम जोन्स एक दिन संस्कृतके पूर्ण विद्वान् हो गये। उन्होंने स्वयं संस्कृतके कई ग्रन्थोंका अंग्रेजीमें अनुवाद भी किया और उनकी सोसाइटीसे तो अबतक हजारों संस्कृत तथा भारतीय भाषाओंके ग्रन्थ एवं जर्नलके अंक प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें स्वयं लिखे हुए आलोचनात्मक निबन्ध हैं। इनका शकुन्तलाका अनुवाद तथा तत्सम्बन्धी हस्तलेखों एवं पाण्डुलिपियोंका संग्रह अद्वितीय श्रमका कार्य था। उसीका आश्रय लेकर मोनियर विलियम्ससाहबने शकुन्तलाका 'Hundred Best Books of the World' में उसका शुद्धतम मूल पाठ एवं अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराया। फिर तो सारा

सर विलियम जोन्स ही क्यों? आज भी कोई विद्यार्थी इन सूत्रोंको अपनाकर अवश्य ही विद्याध्ययनमें सफलता प्राप्त कर सकता है। परंतु आजके अधिकांश विद्यार्थी इन सूत्रोंसे दूर होते जा रहे हैं। इन सूत्रोंके प्रति उनके मनमें केवल उपेक्षा ही नहीं है; कुछ घृणा भी है और श्रद्धाका स्थान तो संशयने ले लिया है। यहाँतक कि विद्यार्थीलोग गुरुको अपनेसे भी अयोग्य समझते हैं। इससे विद्या-लाभ दुर्लभ है। तत्परताके स्थानपर भी अनुशासनहीनता आ गयी है। दिन-प्रतिदिन विद्यार्थियोंमें अनुशासनहीनता एवं उच्छृंखलता बढ़ती ही जा रही है। वे लगन एवं परिश्रमको भूल-से गये हैं। नकल-झगड़ा आदि तथा परीक्षामें उत्तीर्ण होनामात्र ही आजके विद्यार्थियोंका लक्ष्य रह गया है। नकल करते समय यदि शिक्षक उन्हें पकड़ता है तो विद्यार्थीगण केवल उनकी पिटाई ही नहीं करते, बल्कि प्राणतक लेनेके लिये उतारू हो जाते हैं। संयतेन्द्रियताकी तो आजके विद्यार्थी आवश्यकता ही नहीं समझते। उनकी समझमें विद्यासे तप या संयतेन्द्रियताका कोई सम्बन्ध नहीं है। छात्रोंके लिये खान-पानकी शुद्धिका कोई भी अर्थ नहीं है। दिन-प्रतिदिन विद्यार्थियोंमें अभक्ष्य वस्तुएँ—मांस-अण्डे एवं मदिरा आदिका प्रचार बढ़ रहा है। इन अभक्ष्य वस्तुओंका प्रभाव उनके मन एवं इन्द्रियोंपर पड़ता है, जिससे वे चंचल होते हैं। भला चंचल मनका विषयासक्त विद्यार्थी मेधावी कैसे बन सकेगा? अच्छा होता कि आजका विद्यार्थी विद्या-प्राप्तिके इन महत्वपूर्ण सूत्रोंपर पुनः ध्यान देकर विद्याध्ययनके अपने अमूल्य समयरूप धनका सदुपयोग करने लगते और अनुशासनहीनता और उच्छृंखलताको पास न फटकने देते। इस प्रकार 'विद्या ददाति विनयम्' का आदर्श पुनः स्थापित हो जाता।

जीवनमें नया परिवर्तन

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०, पी०एच० डी०)

स्वर-विज्ञानकी नयी खोजें अद्भुत हैं। मनोवैज्ञानिकोंने सिद्ध किया है कि जो शब्द आपके मुखसे निकलते हैं, उनमें ऐसे-ऐसे गुप्त अर्थ छिपे हुए हैं, जिनका बल आपके जीवनको बदल डालनेकी सामर्थ्य रखता है।

आपके मुखसे निकलनेवाला हर एक स्वर या शब्द, चाहे उसका कुछ भी अर्थ क्यों न हो, आपके मन, वाणी और सम्पूर्ण शरीरको चलायमान कर देनेकी ताकत रखता है।

शब्द बोलते समय क्या होता है ? ध्यानसे देखिये, इससे हमारी समस्त नाड़ियाँ झंकृत हो उठती हैं। हमारे मुखमण्डलके अवयव विशेषरूपमें तनते या ढीले पड़ते रहते हैं। हमारे ओंठ हिलते हैं, पर साथ ही हमारे नेत्र, हमारे कपोल, हमारा मुखमण्डल एक विशेष प्रकारसे देदीप्यमान हो उठता है।

प्रत्येक शब्दके साथ एक विशेष तथा अन्य छोटे-छोटे असंख्य भाव छिपे हुए हैं। जब हम अर्थ समझकर किसी भी शब्दका उच्चारण पूरी निष्ठा और एकाग्रतासे करते हैं, तो वे भाव हमारे मानसिक जगत्में तथा शरीरके रक्तके कण-कणमें फैल जाते हैं।

हमारा सम्पूर्ण मानसिक वातावरण उसी स्वरसे आच्छादित हो उठता है। शरीरका अणु-अणु उसी शब्दके भाव तथा अर्थसे काँप उठता है या यों कहें वह उसी शब्दसे ढल जाता है।

आप कोई शब्द पूर्ण विश्वास और एकाग्रतासे उच्चारण कीजिये और साथ ही दर्पणमें अपने मुँहकी आकृति भी देखिये। आप पायेंगे कि उस शब्दके भाव या अर्थके अनुसार ही आपकी आकृति भी बनती-बिगड़ती जा रही है।

जैसे ही क्रोध, आवेश या उत्तेजनाका कोई शब्द आपके मुँहसे निकलता है, वैसे ही आपका चेहरा तन जाता है, ओंठ काँपने लगते हैं, सम्पूर्ण शरीरमें थरथराहट उत्पन्न हो जाती है, आपके नेत्र चढ़ जाते हैं। इन बाह्य परिवर्तनोंके अन्तर्गत आपके शरीरके <http://www.dsc.org/d>

जगत्में एक अजीब कोलाहल, कसर और तेजी पैदा हो जाती है। जितनी देरतक क्रोधके शब्द आपके मुँहसे निकलते रहेंगे, उतनी देरतक आपके मानसिक संस्थानमें भी भयंकरता छायी रहेगी। वैसी ही अन्तःस्थिति बन जायगी। आपके हृदयमें क्रोधाग्नि जलने लगेगी। दिलकी धड़कन बढ़ जायगी। शरीरमें गरमी, खुश्की और वायु-प्रकोप प्रतीत होगा। देरतक क्रोधके शब्दोंका उच्चारण करनेसे सिरमें भारीपन आ जायगा। आप पायेंगे कि आपकी कमर दर्द करने लगी है।

बुरे शब्दोंसे मनोरोग

स्वर-विज्ञान बतलाता है कि बुरे शब्दोंका उच्चारण करनेसे मनुष्य मानसिक बीमारियोंका शिकार बनता है। देरतक क्रोध, आवेश, भ्रम, संदेह, द्वेष, घृणाके शब्द बोलनेसे मानसिक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं।

प्रत्येक अच्छा या बुरा शब्द एक प्रकारका बीज है, जो बोलनेसे मनके गुप्तभागमें जड़ जमा लेता है। ये जड़ें बार-बार वही शब्द या वाक्य बोलनेसे बढ़कर वृक्ष बन जाती हैं और वैसे ही अच्छे या बुरे फल जीवनमें प्रकट करती हैं। बुरे शब्दोंसे स्वभाव कर्कश, उत्तेजक, क्रोधी, ईर्ष्यालु, दम्भी बन जाता है।

मनोविज्ञानवेत्ता बतलाते हैं कि जो व्यक्ति या असभ्य जातियाँ मुँहसे कुशब्द, वासनासे सने गाने, गाली-गलौज इत्यादिका उच्चारण किया करती हैं, उनके बच्चोंके चरित्रोंके गिरानेमें इन कुशब्दोंका बड़ा हाथ होता है। अबोध बच्चे बिना उनका अर्थ समझे जैसे गन्दे और अश्लील शब्द माँ-बाप, पास-पड़ोस और निकट वातावरणमें सुनते हैं, वे वैसा ही उचित समझकर उन्हें गुप्त मनमें बीजरूपसे जमा लेते हैं। सिनेमाके अश्लील गीत गुनगुनाया करते हैं। बड़े होनेपर उनका गन्दा और विकृत मतलब समझकर वे उधर ही दुलक पड़ते हैं, फिर मनमें बसे उन शब्दोंके अनुसार ही अपना जीवन ढालने लगते हैं और सदाके लिये पतनके मार्ग पर चले जाते हैं।

हम वर्षोंमें नहीं कर सकते, उसे चुने हुए शब्दोंकी शक्ति कुछ क्षणोंमें ही कर दिखाती है। शब्दकी चुम्बकीय शक्तिद्वारा खिंचकर इच्छित वस्तु हमतक पहुँचती है।

अतः हम किन शब्दोंका प्रयोग करें? उत्तर है—
'जिह्वा मे मधुमत्तमा' (तैत्तिरीय० १।४)

हे ईश्वर ! मेरी यह जीभ मीठी वाणी बोले । मैं भी कभी कटु, कर्कश और कुवचन बोलकर अपनी वाणीको दूषित न करूँ ।

हम सर्वदा, दैनिक जीवनमें, समाजमें, परिवार और व्यवहारमें उन्हीं शब्दोंका प्रयोग करें, जो मृदु, सरस, उत्साहप्रद, मधुर और हितकारी हों। जो हमारी नीरसता दूर भगाकर मनमें नयी उमंग, नयी प्रसन्नता और हृदयके उल्लासकी अभिवृद्धि करें।

संतोंकी वाणियाँ, मधुर भगवद्भजन, आरती, भक्ति-संगीतका अथाह भंडार आपके हृदयमें उल्लासपूर्ण भावोंकी सृष्टि कर सकता है। मनको नयी प्रसन्नता और उत्साहसे भर सकता है। मधुर तथा उन्नतिशील भावोंके गीत और कविताओंका उच्चारण कीजिये।

मनको शान्तकर चुपचाप ऐसे शब्दोंका उच्चारण कीजिये, जो मनको शान्त और संतुलित करें। आत्मश्रद्धाको बढ़ायें। कर्तव्यपथपर चलनेको प्रोत्साहित करें।

जैसे, आप कहिये, 'मेरा अन्तःकरण दृढ़ है। मैं शान्त और संतुलित हूँ। मेरे मनमें किसी प्रकारकी क्षुद्र चंचलता, व्याकुलता और बुराई नहीं ठहर सकती। मेरे अन्दर साक्षात् ईश्वर विराजमान हैं। उन्हींकी शक्ति मझमें कार्य कर रही है।'

‘मैं परमात्माका अंश हूँ। मैं समस्त प्राणिमात्रमें अपनी ही परछाई देखता हूँ। सबको प्रेम, दया और सहानुभूतिसे देखना चाहता हूँ। मैं सत्-चित्-आनन्दस्वरूप हूँ, मैं आत्मा हूँ, समस्त रोग और शोकसे रहित हूँ, मैं अपनी आत्माके गुणोंको ही जीवनमें प्रकट कर रहा हूँ।’

‘मेरे हृदयमें अखण्ड प्रसन्नता, अखण्ड आनन्द और शाश्वत शान्तिदायक सद्द्विचारोंका दिव्य प्रवाह निरन्तर बहता रहता है। मेरी शान्तिको कोई भी भंग नहीं कर सकता। विपरीत स्थितिमें भी मेरी मनःशान्ति अक्षय

बनी रहती है।’

‘मैं अपने अन्दर अनन्त शक्तिका अनुभव कर रहा हूँ। मेरे अन्दर अखिल विश्वमें व्याप्त ईश्वरीय सत्ताका स्वरूप प्रकट हो रहा है। मेरा निर्माण भगवान्‌के सनातन शुद्ध अंशसे हुआ है। मैं अपने अन्दर उसी मंगलमय भगवान्‌का दर्शन कर रहा हूँ। मैं हर प्रकारसे शुद्ध हूँ, सात्त्विक हूँ। मुझमें पूर्ण ज्ञान है। पूर्ण शक्ति है—प्रेम है, ईश्वर मुझमें है, मैं ईश्वरमें हूँ।’

अपने इच्छानुकूल सुन्दर सात्त्विक मन्त्र चुनिये। उनका अर्थ समझिये और प्रतिदिन पूजामें उन्हें बार-बार दुहराइये। ऊपर लिखे मानसिक संकेत बनाइये और रात्रिमें सोते समय तथा सुबह उठते ही उनका उच्चारण कीजिये। भक्तोंके, कवियोंके तथा नीति एवं उपदेशोंसे सने हुए भजन, गीत और कविताएँ श्रद्धापूर्वक उच्चारण कीजिये। कीर्तन कीजिये। निश्चय जानिये, सात्त्विक शब्दोंका रसायन आपके जीवनमें एक नया परिवर्तन ला देगा। हमारे यहाँ ‘जप’ नामकी जो धार्मिक क्रिया है, मनोवैज्ञानिक आधार यही शब्द-शक्ति है। अच्छे मन्त्रोंके जपसे नये-नये गुण, ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रकट होती हैं और शुभ प्रवृत्तियोंका विकास होता है।

हमारी यही कामना होनी चाहिये, 'हे ईश्वर! मेरी जिह्वा सदा मधुर, सत्य, कल्याणकारी, सर्वहितकारिणी वाणी ही बोले। मैं कभी कटु, कर्कश और कुवचन बोलकर अपनी वाणीको दूषित न करूँ। सात्त्विक शब्दोंसे अपने इर्द-गिर्द पवित्र वातावरणका निर्माण करूँ। मैं निरर्थक बकवाससे सदा बचता रहूँ। सारगर्भित, पवित्र और कल्याणकारी शब्दोंका ही प्रयोग करता रहूँ। मेरे मुँहसे 'ॐ शान्ति', 'हरे कृष्ण' 'जय राम', इत्यादि पवित्र नाम ही निकलें। मेरी वाणी सर्वहितकारिणी हो। मुझे आध्यात्मिक जीवनकी ओर ले चलें।'

ॐ विश्वानि देव सवितुः दुरितानि परा सुव
यद्भद्रं तन्न आ सुव।

‘हे परमपिता, जगदीश्वर ! जो दुःखदायक वस्तुएँ हों, उन्हें हमसे दूर हटा दीजिये । जिन शब्दोंसे हमें आत्मिक सुख प्राप्त हो, उन्हें ही हमारे मुखसे निकलने दीजिये ।’

(श्रीसूदर्शन सिंहजी 'चक्र')

‘जैसी आज्ञा!’ गुरु गोरखनाथके संकेतपर एक

तरुण योगी आये। उन्होंने आसन स्थिर किया, आधे क्षणमें प्रत्याहार ध्यानमें और ध्यान समाधिकी भूमिमें पहुँचा। स्थिर अर्धोन्मीलित दृग्! भगवान् दत्तका दक्षिण कर उठा और योगी सविकल्पसे निर्विकल्पमें पहुँचनेके स्थानपर बाह्यचेतनामें आ गया।

‘मनुष्य सदा समाधिमें स्थित नहीं रह सकता!’
भगवान्‌के शब्दोंने एक सन्देश दिया—‘निर्विकल्पकी
शान्ति सामान्य जीवनमें अवतरित करो वत्स! अपने
गुरुदेवके आदर्शको अपनानेका प्रयत्न करो!’

‘सोऽहं’ दीर्घ घण्टा-निनाद। दूसरे साधकने वह स्थान लिया पहलेके उठ जानेपर और उनका प्रगाढ़ संयम—अनाहत उनके अन्तःसे बाह्य जगत्में गूँजने लगा। शंख, वंशीके स्वर उठे और लय हुए—मेघघर्जनसे। ऊपर दिशामें प्रणवकी पराध्वनि गूँजने लगी।

‘वत्स!’ भगवान् दत्तके संकल्पके साथ साधक जागृतिमें आ गया—‘वाद्योंका स्वर जगत्में दुर्लभ नहीं है। मेघकी ध्वनि भी अयाचित आकाशमें गूँजती है। शब्दकी साधनाका लक्ष्य है अशब्दमें स्थिति—नित्य सहज स्थिति जगत्के कोलाहलमें रहते अविकम्प शान्त अशब्दमें!’

‘ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म ॐ’ अन्य साधक आ बैठे थे उस प्रयोगशिलापर। नेत्र-कोणोंके संवेदन स्नायुसूत्रका उन्होंने किंचित् स्पर्श किया और स्थिर हो गये। रूप—अद्भुत अपूर्व रंगोंकी छटा जब अन्तरसे उमड़ी, सम्पूर्ण हिमप्रदेश रक्त, पाटलपीत, हरित, नील रंगोंसे रञ्जित होने लगा। दो-चार क्षण रंगोंकी छटा और फिर दृश्य—अद्भुत अपूर्व दृश्य! जैसे सम्पूर्ण दिव्य सृष्टि साकार हो उठी है। अन्तमें एक परमोज्ज्वल प्रकाण्ड प्रकाश-राशि।

‘अलं!’ प्रभुके एक शब्दने साधकको उत्थित कर दिया। ‘रंग और रूप सम्पूर्ण दृश्य सृष्टिमें बिखरे पड़े हैं। तुम नेत्र बन्द करके संकल्प न भी करो, दिवाकरका जो तीव्र तेज है, जगत्के नेत्रोंको वह नित्य सुलभ है।

यह साधना इस रंग-रूपकी सृष्टिमें तमहें नित्य अरूपमें

निवास दे सके तो यह सफल हुई।'

‘लं’ केवल बीजका उच्चारण किया अब आसनपर आये साधकने। शीघ्र ही दिशाएँ सौरभसे भर गयीं। पुष्प-सार जैसे सम्पूर्ण पर्वतोंपर लुढ़का दिये गये हों। क्षण-क्षण सुरभिका परिवर्तन—मानो मनो घृत-कर्पूरका हवन हो रहा हो और अन्तमें तुलसी-मञ्जरीका स्थिर अपार सौरभ!

भगवान् दत्तात्रेयने उत्थित करके समझाया इस साधकको 'कहीं भी कोई जाय, गन्ध आयेगी ही। अगन्ध-सहजावस्था है और उसमें स्थित रहना है।'

इसी प्रकार रसका साधक आया। खेचरी मुद्रा तो की उसने; किंतु उसे उत्थित करके गुरु दत्त किंचित् हँसे—‘वत्स! तुम्हारे साधनने हम सबका आतिथ्य कर दिया। नाना रसोंका आस्वादन अनुभव किया हमने और अमृतका स्वाद पाया; किंतु रस कहाँ लोकमें दुर्लभ हैं। रसातीत स्थितिमें नित्य अवस्थिति, यह लक्ष्य है तुम्हारी साधनाका।’

स्पर्शके साधकने कुछ अंग-चालनकी क्रियाएँ कीं और तब स्थिर हुआ। हिमप्रदेश सुखद उष्ण बन गया। सबके त्वक्ने पाटलदलोंके स्पर्शका अनुभव किया। भगवान्ने उसे सन्देश दिया ‘अस्पर्श—समस्त स्पर्शोंमें रहते स्पर्शातीत बने रहो!’

‘तुमने क्या-क्या अनुभव किये?’ अन्तमें भगवान् दत्तने योगी भर्तृहरिसे पूछा।

‘आपके पदपंकज सम्मुख हैं और उनका जो चिन्मय प्रभाव है, वह वाणीमें नहीं आता!’ विनम्र उत्तर था।

‘तुम्हारे इन साथियोंके प्रयोगोंका चमत्कार?’

‘क्षमा करें प्रभु!’ वाणीका संकोच कह रहा था कि भर्तृहरिका मन इन्द्रियोंके साथ नहीं था, अतः उन्हें कोई चमत्कार प्रभावित नहीं कर सका। कोई वृत्ति उनके चित्तमें उठी नहीं।

‘यही है अलख-अलक्ष्य स्थिति!’ भगवान्ने बताया—‘मनकी यही सहज एकाग्रता परम योग है।’

सब योगकियाओंका यही परम लक्ष्य है।'
 arma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shr

वृद्धावस्था

(वैद्य श्रीमोहनलाल गुप्तजी)

वृद्धावस्था शरीरकी जीर्णावस्था है, किंतु जीवन-शैलीमें परिवर्तनसे इस अवस्थाको युवावस्थाकी तरह जिया जा सकता है। जरावस्था विविध रोगोंकी शरण-स्थली है। जहाँ कई प्रकारके रोग शरीरको घेरे रहते हैं। शरीर-विज्ञानकी दृष्टिसे त्वचाके नीचे वसाकी परत गल जाती है, जिससे त्वचापर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। मांसपेशियाँ कमजोर हो जाती हैं। धमनियाँ कठोर हो जाती हैं, जिससे रक्तप्रवाहमें न्यूनता आने लगती है। अस्थियोंमें पोलापन (मज्जाकी कमी) आने लगती है। दाँत कमजोर होकर गिरने लगते हैं। आँखोंकी ज्योति क्षीण हो जाती है। कानोंमें श्रवणशक्तिका अभाव हो जाता है अर्थात् बहरापन आने लगता है।

आमाशय एवं आँतोंमें पाचन रसकी कमी आ जानेसे पाचन शक्ति बिगड़ जाती है, जिससे भूखमें कमी हो जाती है। इसके साथ ही पौरुष ग्रन्थिका बढ़ना एवं अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियोंमें शिथिलता होने लगती है, कोशिकाओंकी क्षरण प्रक्रियाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं। जिससे शरीर कृशताको प्राप्त होने लगता है।

मस्तिष्ककी क्रियाएँ कमजोर होनेसे स्मरण-शक्ति, एकाग्रता, श्रवण-शक्ति आदिमें भी गिरावट, चिड़चिड़ापन एवं चक्कर आना, सामाजिक जीवनसे कटाव आदि विकार होने लगते हैं। ऐसी शारीरिक क्रियासे वृद्ध व्यक्तिके मनमें हीन भावके प्रवेश हो जानेसे वह मनसे हार जाता है। विशेषकर यदि घरसे उपेक्षित हो तो वह स्थिति और भी दुःखदायी हो जाती है। हीन भावना एवं हताशासे उसके मनमें यह विपरीत सोच घर कर जाती है कि उम्र ढली तो कद्र घटी। घरमें भाररूप, न घरमें प्यार न बाहर।

आँखोंकी ज्योति, चेहरेकी मुस्कान, पाँवोंकी गति, जिह्वाकी वाणी, कानोंकी श्रवण-शक्ति गयी।

समान आयुवाले कई इष्टमित्र, एक-एक करके समाप्त होते जा रहे हैं। हाड़-मांसका यह पिंजरा दिन-पर-दिन क्षय होता जा रहा है और एक समय ऐसा आ

जाता है कि यह शरीर जीवनके अन्तिम छोरपर खड़ा अन्तकी प्रतीक्षा करने लगता है।

लेकिन सोचें! मनके हारे हार है, मनके जीते जीत। वृद्धावस्था अभिशाप नहीं वरदान है। अबतक हम घरवालों एवं जगत्के लिये क्रिया-कलाप कर रहे थे। अर्थात् जी रहे थे। अब हमको स्वयंके लिये जीना है अर्थात् अब हमको अपना भावी मार्ग प्रशस्त करना है। ईश्वरसे, परमात्मासे लगन लगाना है। हमारे सभी कार्य उसीके कार्य हैं, ऐसा सोचकर नित्य उसीका चिन्तन करना है। मोहमायासे छुटकारा पाकर निर्मोही बन जाना है। यह बुढ़ापा बोझ नहीं ओज है, जीवनकी स्वर्णिम साँझ है। यह जीवनका एक परिपक्व फल है, जिसमें ज्ञानकी पूर्णता, अनुभवोंकी मिठास चिन्तनकी उपयोगिता तथा जीवन जीनेकी गहराई होती है।

इस वृद्धावस्थामें ही तो कई लोगोंने वैज्ञानिक, राजनैतिक, साहित्यिक एवं आध्यात्मिक सफलता प्राप्त की है। इसे शक्तिहीन, पराधीन, बीमारीका घर, असहाय और अभिशाप समझना हमारे चिन्तनकी कमी है। इससे बुढ़पेको मापना उचित नहीं है।

त्वचामें झुर्रियाँ भले ही हों, पर मनमें मुरझाहट (निराशा, हताशा या निःसारभाव) नहीं आने देना चाहिये। यही सच्ची जीवन जीनेकी कला है। हमेशा शरीरमें उत्साह, उमंग, नया कार्य करनेका भाव होना चाहिये। हमने देखा, सुना; बहुतसे लोग कहते हैं कि समय काट रहे हैं। ऐसा कहना उचित नहीं है। वे लोग जीवनको भार समझने लगते हैं। यह बहुत बड़ी कमजोरी है। उनमें उत्साह नहीं रहा, जीवन जीनेकी उमंग नहीं रही। ऐसे लोगोंका अपने सम्पूर्ण जीवनमें केवल पेट भरना, मक्कारी करना, कामसे जी चुराना, अपना स्वार्थ सिद्ध करना, दूसरोंकी कमाईसे पेट पालना या गलत कमाईसे जीवन-यापन करना ही उनका काम रहा होगा, इसलिये अब उन्हें आनन्द

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

या सुख नहीं है।

इस शरीरके बारेमें गीतामें श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है कि—‘आत्मा अमर है, वह नहीं मरती, शरीर मरता है। आत्मा इस शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें प्रवेश कर जाती है। यथा—

वासंसि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-

न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

यह शरीर एक पुराने कपड़ेकी तरह है, जब यह अत्यधिक जीर्ण हो जाता है, तब यह (आत्मा) इसे छोड़कर दूसरा कपड़ा (शरीर) धारण कर लेता है।

दूसरे शब्दोंमें कहें तो यह शरीर एक धर्मशाला है, इस धर्मशालामें एक मैनेजर (मालिक) एवं एकादश कर्मचारी नित्य सतत अपना-अपना कार्य करते रहते हैं, समय आनेपर हर कर्मचारीका कार्य पूर्ण होनेपर वह चला जाता है या कार्य करनेमें शिथिलता करने लगता है। धीरे-धीरे सभी कर्मचारी शिथिल हो जाते हैं, या चले जाते हैं। तबतक यह शाला अत्यन्त जीर्ण हो जाती है। दीवारोंमें टूटफूट होने लगती है। आने-जानेके मार्ग बन्द होने लगते हैं। तब वह मैनेजर भी एक दिन चुपचाप इसे छोड़कर अन्यत्र चला जाता है। एकादशवाँ (११वाँ) कर्मचारी प्रथम पाँच कर्मचारियोंको भटकानेका कार्य करता है। मैनेजरके कहे अनुसार न चलने देता है। अन्तमें धर्मशाला निश्चल होकर मात्र मिट्टी रह जाती है। अब इसे जानिये—

धर्मशाला यह शरीर है। इसमें मैनेजर या मालिक आत्मा है। एकादश कर्मचारी—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं पाँच कर्मन्द्रियाँ और एक मन है।

सभी ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक, जिह्वा एवं त्वचा) धीरे-धीरे क्षीण होने लगती हैं। आँखकी ज्योति क्षीण हो जाती है, कानकी श्रवण-शक्ति मिट जाती है, नाककी घ्राण-शक्तिका पता ही नहीं चलता, जिह्वाका स्वाद नष्ट हो जाता है। चमड़ीका स्पर्शज्ञान सुन्ततामें बदल जाता है। इसी प्रकार कर्मेन्द्रियाँ हाथ-पैर काम

करना बन्द कर देते हैं। मल-मूत्र अवरुद्ध होने लगते हैं। चमड़ी सड़-गल जाती है। हड्डियाँ आवाज करने लगती हैं, कभी कोई टूट भी जाती है।

इस प्रकार जब सारा शरीर जीर्ण हो जाता है तो एक दिन आत्मारूपी मैंनेजर भी इसे छोड़कर चला जाता है। अतः जबतक धर्मशाला (शरीर) काममें आती है तबतक धर्म-कर्मकर परमात्माका स्मरण करना न भूलें।

जो व्यक्ति अभीतक सम्मानसे जीया और आगे भी वह सम्मान ही चाहता है, पर वृद्धावस्था ऐसी अवस्था आ जाती है कि जिसमें उसे सम्मान मिलना कम हो जाता है या मिलना ही बन्द हो जाता है। नई पीढ़ीके बहुतसे लोग वृद्धोंका सम्मान करना तो दूरकी बात वे तो हर वक्त अवहेलना या तिरस्कार करनेमें नहीं चूकते। हर समय यह कहकर कि—‘आप नहीं समझते। आपको क्या करना है? आप चुप रहिये’ आदि शब्द ऐसी भाषामें कहे जाते हैं जिनमें उपेक्षाके भाव स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। इससे वृद्ध व्यक्तिको अपना अपमान महसूस होने लगता है और वह अपने इस जीवनको भार समझने लगता है।

जिसने जीवनमें कभी अपमान नहीं सहा—परिश्रम, सत्यनिष्ठा एवं ईमानदारीका जीवन जीया—वह अपने ही लोगोंसे इस प्रकारका अपमान सहन करनेमें भारी दुःख महसूस करने लगता है।

इससे उसका परिवारसे धीरे-धीरे स्नेह एवं लगाव घटने लगता है। तथा बदलेमें उसके मनमें जलन, कुढ़न इर्ष्या एवं स्नेहके विपरीत भाव पैदा हो जाते हैं। जो भविष्यमें परिवारको भोगने पड़ते हैं तथा वृद्धकी अन्तिम अवस्था बिगड़ जाती है।

अतः अन्तर्में मेरा सभीसे विनम्र निवेदन है कि वृद्धोंकी आत्माको हमेशा खुश रखना उनसे शुभ आशीर्वाद नित्य लेना अपने भावी जीवनको सुखी समृद्धशाली बनानेका परम रहस्य है। वृद्धोंकी सेवा ईश्वरकी सेवा है। उनको प्रसन्न रखना, उनसे शुभाशीष लेना परमात्माकी कृपा पाना है।

अब एक प्रश्न पैदा होता है। क्या ईश्वरसे साक्षात्कार किया जा सकता है? हाँ! अवश्य, यह प्रेमसे सम्भव है। बस! प्रेम करो और उसीमें खो जाओ, अपनेको भूल जाओ, प्रेममय बन जाओ। प्रेमकी अनन्त आवृत्तियाँ तुम्हें केवल प्रेम बना देंगी और जब प्रेमके अतिरिक्त कुछ होगा नहीं तो निश्चित रूपसे तुम प्रेमस्वरूप बन जाओगे। शायद यही वह समय होगा जो तुम्हें इस मानव-जीवनके चरम लक्ष्यके द्वारपर खड़ा कर देगा। हाँ, एक बात अवश्य है। प्रेमका अभ्यास तो करो,

जब हमारे मानवीय क्रिया-कलाप तथा विचार शुद्ध होकर हमें परम प्रेमसे युक्त कर देंगे तो हमें संसारमें व्याप्त कण-कण प्रेममय प्रतीत होगा। ऐसी दशामें हमारी प्रत्येक साँस प्रेमसे ही अभिभूत होगी तथा ईश्वरीय प्रेम-सम्बन्धोंसे एकाकार होकर हमारे जीवनको ही प्रेमस्वरूप बना देगी।

सर कर इहि लायक नाहीं, कहूँ लगि करौं बडाई ॥

भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा-जगत् का मूलाधार है

(आचार्य डॉ० श्री वी०के० अस्थाना)

हमारा आयुर्वेद उतना ही पुराना है, जितनी कि वैदिक ऋचाएँ। वैदिक ग्रन्थोंकी प्रचीनता विश्व वाङ्मयमें किसीसे परोक्ष नहीं है। किंतु खेदका विषय यह है कि भारतीय जनमानस—‘**घरका जोगी जोगड़ा-आन गाँवका सिद्ध**’ की मान्यतासे ग्रस्त है। वह भारतकी किसी भी वस्तु, व्यक्ति, संस्कृति एवं सभ्यताको मात्र वैदेशिक चश्मेसे देखनेका आदी हो गया है। विश्वके अधिकतम राष्ट्र अपनी भाषा, संस्कृति एवं सभ्यताको जितना महत्त्व देते हैं भारतके अधिकांश लोग उसका चौथाई भी स्वीकार नहीं कर पाते हैं। वास्तवमें यह भारतीयोंका दुर्भाग्य ही है; क्योंकि उन्होंने भारतीय विद्याकी अमूल्य धरोहरको पहचाना ही नहीं। कारण? इसका क्षेत्र अति व्यापक है, जिसके लिये सूक्ष्म एवं दीर्घकालिक समयकी महती आवश्यकता है। भारतीय मनीषी वीतरागी थे, उन्हें फैशन अथवा प्रदर्शन करनेका शौक नहीं था जबकि अधिकांश छोटे-बड़े विद्यालयोंके विज्ञान एवं टेक्नोलॉजीसे सम्बद्ध बच्चे टाई बाँधे बिना कॉलेजमें प्रवेश नहीं पा सकते, भले ही वैशाख-जेठका तपता महीना ही क्यों न हो? यही है हमारी दासता, जिसे आज हम स्वतन्त्र होनेके बाद भी नहीं छोड़ पा रहे हैं। इन्हीं अनेक कारणोंसे ही हम अपनी विरासतको भूलते जा रहे हैं। जबकि ज्ञान-विज्ञान एवं औषधीय उपलब्धिमें हमारे भारतका कोई शानी नहीं रहा है। इसी सन्दर्भमें हम भारतीय आयुर्वेदकी महती उपलब्धियोंको अपने पाठकोंके समक्ष कतिपय महत्त्वपूर्ण बिन्दुओंको रखना चाहेंगे, जिससे हमारी आनेवाली अग्रिम पीढ़ियाँ आयुर्वेदको भारतीय थाती माननेमें कम-से-कम माथा-पच्ची न करें अथवा यह न कह दें कि आयुर्वेद विदेशसे आयी हुई विद्या है। इस दिशामें राष्ट्रीय भावनासे ओतप्रोत भारतकी कुछ निजी संस्थाओंने स्तुत्य कार्य किया है, जो आयुर्वेदके विकासके लिए काफी उपयोगी सिद्ध होगा। आयुर्वेदकी प्राचीनताका सबसे बड़ा प्रमाण विदेशोंमें इसका समादृत स्थान है। आयुर्वेदका अध्ययन विदेशोंमें सर्वप्रथम ग्रीस तथा मिस्र देशके लोगोंने किया था। ग्रीस देशमें चिकित्साशास्त्रके जन्मदाता हिपोक्रेटिस

(Hippocrates) – का नाम बड़े ही आदरके साथ लिया जाता है। इसका प्रमाण काश्यप संहिताद्वारा मिलता है जिसमें कहा गया है कि हिपोक्रेटिसको भारतमें शिक्षा ग्रहण करनेके लिये उसके पिताने भेजा था। इस प्रकार ग्रीस देशसे ही मेगस्थनीज तथा केशियस—ये दो चिकित्सक आयुर्वेदका अध्ययन करनेके लिये उत्तरी भारतमें ३०० एवं ४०० बी०सी० में आये थे। इन दोनोंने प्रत्यक्ष शरीरशास्त्र (Dissection) – का अध्ययन किया तथा ग्रीसमें इसका प्रचार-प्रसार किया। इस बातका प्रमाण हार्नले (Horneley) – की निम्नलिखित पंक्तियोंसे भी लिया जा सकता है—

We have no direct evidence of the practice of human dissection in Hyppocrates school but now of the visit about 400 B.C. of Ktesias to India the alternative conclusion of dependence of greek anatomy on that of India can not be simply put a side

हार्नले महोदयने यह भी स्वीकार किया है कि ई०पू० छठी शताब्दीके प्रारम्भिक कालमें आत्रेय तथा आचार्य सुश्रुतका भारतीय आयुर्वेदिक विद्यालय अपने विकासकी चरम अवस्थापर था। इस प्रकार इसके सार्वभौमिक विकासकी प्रक्रिया किसी विज्ञ व्यक्तिसे छिपी नहीं है। इसकी भव्य सार्वभौमिक उन्नतिको देखकर ही सिकन्दरने ३२३ बी०सी० में भारतपर आक्रमण किया था। ६२३ बी०सी० में पाइथागोरस (Pythagores) भी भारतीय शिक्षा ग्रहण करनेके लिये भारत आया था। यही सब कारण रहा है कि विश्वके सभी विज्ञ वर्गके लोग इस बातको स्वीकार करते हैं कि भारतके विकासकी रेखा जहाँ समाप्त होती है, वहींसे अन्य देशोंका विकास प्रारम्भ होता है।

डॉ० मैकडोनेल (Dr. Macdonell) तथा डॉ० कीथ (Dr. Kaeith)-ने भी इस बातको स्वीकार किया है कि शल्य चिकित्सा आजसे ५००० वर्ष पूर्व अर्थात् महाभारत-कालमें भी शल्य-विज्ञानकी दृष्टिसे विकासकी चरम अवस्थापर था। इसका प्रमाण महाभारतके भीष्मपर्वके

[illegible]

१२०वें अध्यायमें स्पष्ट रूपसे देखा जा सकता है—

उपातिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः ॥

सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलैः साधु शिक्षिताः ।

अर्थात् जिस समय भीष्म पितामह शरशय्यापर पड़े थे, उस समय विंधे हुए बाणोंको निकालनेमें कुशल वैद्योंको बुलाया गया था, जिनके पास अनेक प्रकारके उपकरण विद्यमान थे। महाभारतसे भी पहले रामायण-कालमें भी शल्यक्रिया अपनी पराकाष्ठापर थी। जैसा कि माँ सीताके उद्विग्नतापरक वाक्योंसे शल्यक्रियामें कुशल वैद्योंकी सूचना मिलती है—

तस्मिन्नागच्छति लोकनाथे गर्भस्थजन्तोरिव शल्यकृन्तः ।

नूनं ममाङ्गान्यचिरादनार्यः शस्त्रैः शितैश्छेतस्यति राक्षसेन्द्रः ॥

(वा०रा० सुन्दरकाण्ड २८।६)

अर्थात् भगवान् श्रीरामके आनेसे पहले ही यह दुष्ट राक्षसराज रावण अपने तीखे शस्त्रोंसे मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े वैसे ही कर देगा-जैसे एक शल्य चिकित्सक गर्भस्थ शिशुको टुकड़े-टुकड़े कर देता है।

आयुर्वेद विधामें शल्य-क्रियाके साथ-साथ जड़ी-बूटियोंका विशेष महत्त्व था। जड़ी-बूटियोंसे चिकित्सा इतनी विकसित हो गयी थी कि शल्य-चिकित्साकी प्रायः आवश्यकता ही नहीं रहती। जिस समय मेघनादने ब्रह्मास्त्रका उपयोग किया तो राम, लक्ष्मणसहित अगणित वानरी सेना बिंधे हुए बाणोंसे मूर्च्छित पड़ी हुई थी। जाम्बवन्तके कहनेपर हनुमान्जीद्वारा हिमालयपर्वतसे विशल्यकरणी नामक बूटी लायी गयी और उसे सुँघानेमात्रसे सभी होशमें आ गये तथा बाण भी आसानीसे निकल गया—

तावप्युभौ मानुषराजपुत्रौ तं गन्धमाघ्राय महौषधीनाम् ।

बभूवतुस्तत्र तदा विशल्यावुत्तस्थुरन्ये च हरिप्रवीराः ॥

सर्वे विशल्या विरुजाः क्षणेन हरिप्रवीराश्च हताश्च ये स्युः ।

गन्धेन तासां प्रवरौषधीनां सुप्ता निशान्तेष्विव सम्प्रबुद्धाः ॥

(युद्धकाण्ड ७४। ७३-७४)

डॉ० पी०सी० रायने स्वरचित 'भारतीय रसायन शास्त्र' में स्पष्ट किया है कि अरबनिवासी भारतमें आकर चिकित्साशास्त्रका अध्ययन किया करते थे।

१०वीं शताब्दीके मध्यकालका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है कि 'खलीफा हारून और मन्सूर' (Harun And Mansoor)–की आज्ञासे भारतीय चिकित्साशास्त्र तथा विभिन्न द्रव्यों, गुणों आदिका अरबी भाषामें अनुवाद कराया गया था। इसी प्रकार फ्लूजेल (Fluzel) नामक विद्वान्ने भी अपनी पुस्तक किताब–अलफिहरिस्त (Kitab-Alfiharist) में इस बातका उल्लेख किया है कि सुश्रुत–संहिताका अनुवाद अरबी भाषामें किया गया है। इस पुस्तकमें यह वर्णन आया है कि हारून अल रसीदको (Harun-Al Rashid) एक घातक व्याधिसे बचा लिया गया था, जिससे प्रसन्न होकर उसे वहीं राजकीय आतुरालयमें नियुक्त कर दिया गया था। उस समय मुस्लिम देशोंके विद्यार्थियोंकी यह दृढ़ भावना बन गयी थी कि उनका ज्ञान–विज्ञान तबतक अधूरा है, जबतक वे भारतमें आकर सम्बन्धित विषयोंका अध्ययन न कर लें।

‘हारून-अल-रशीद’ बगदादका राजा था, उसका शासनकाल ७८६ से ८०८ AD था। उस समय भारतमें ‘विजयनगर’ और अरबमें ‘बगदाद’ विद्याका केन्द्र था। अचार्य चरक और आचार्य सुश्रुतकी आयुर्वेदिक संहिताओंका भाषानुवाद आज भी अरबी और आंग्ल भाषामें विद्यमान है। भारतीय आयुर्वेदका प्रचार-प्रसार बौद्धकालमें बौद्ध भिक्षुकों द्वारा सिंहलद्वीप, तिब्बत और मंगोलिया आदिमें हुआ, किंतु कालान्तरमें आयुर्वेदका ह्रास भी हुआ।

निष्कर्षतः इतना कुछ कहनेके पीछे हमारा मूल उद्देश्य यही है कि हम भारतीय अपनी मूल विरासत संस्कृति एवं सभ्यताकी गहराईमें जायँ तथा अपने भारतीय अतीतके गौरवको उसी रूपमें सम्मानपूर्वक जीवन जीनेकी ओर अग्रसर करें और विश्वमें एक बार फिर यह सिद्ध कर दें कि हमारा भारत आदि गुरु रहा है और अब भी है। किंतु हमारी सोच एवं उद्देश्यको तभी सफल बनाया जा सकता है, जब भारतका विद्वत्समाज अपने वैदेशिक चश्मेको उतारकर भारतकी मुख्य पृष्ठभूमिसे जुड़नेका प्रयास करेगा और तभी हमारे भारतका दिव्य पुनर्जन्म सम्भव हो सकेगा।

अपेक्षाएँ अशान्तिको जन्म देती हैं

(श्रीवृजमोहनजी गोयल)

एक सुन्दर सूत्र है आत्मकल्याणका—‘जगत्से अपेक्षाएँ न रखे; क्योंकि जगत् उपेक्षाके योग्य है। अपेक्षा यदि रखनी ही है तो जगदीशसे रखे।’ अपेक्षाका अर्थ होता है चाहत, किसीसे कुछ पानेकी आशा रखना और उपेक्षाका अर्थ इसके विपरीत है अर्थात् जगत्में किसीसे भी कुछ पानेकी आशा न रखना और निरपेक्षभावसे सबमें भगवद्भाव रखते हुए स्वार्थका परित्यागकर सबकी सेवा करना। यह चाहत धन-सम्पत्ति, सुविधा, मान-सम्मान, सुरक्षा आदि किसी भी तरहकी हो सकती है। चाहत कामनाका ही दूसरा नाम है। कामना जीवनमें दुःख तथा अशान्तिको जन्म देती है। जब मनुष्य जगत्से इस प्रकारकी अपेक्षाएँ रखता है तो उसमें हीनता तथा दीनता आती है। यह जगत् स्वयंमें अपूर्ण, नश्वर और असमर्थ है, सारे नाते-रिश्ते स्वार्थपर आधारित हैं। तो भला जगत्से अपेक्षाएँ रख कर क्या सुख-शान्ति मिल पायेगी? अन्ततः निराशा ही हाथ लगेगी?

जीवनमें अपेक्षाओंकी परिणति अहंकार, द्वेष, ईर्ष्या, प्रतिशोध, अशान्ति, असन्तोष आदि विकारोंमें होती है, जबकि उपेक्षासे सन्तोष और शान्ति मिलती है तथा आत्मसम्मानकी रक्षा होती है। व्यक्ति सन्तुष्ट होकर अपने प्रभुके प्रति कृतज्ञ बनता है कि हे प्रभो! आपने मुझे इतना सब कुछ दिया है, भला इस जगत्से अब और क्या अपेक्षा रखना और यह जगत् देगा भी क्या?

एक बार एक फकीर किसी बादशाहके यहाँ भीख माँगने गया। उसने देखा कि बादशाह उस समय खुदाकी इबादत कर रहा है और कुछ माँग रहा है। भिखारी उलटे पाँव लौट गया और सोचा—एक भिखारीसे क्या माँगना, अब तो उसीसे माँगूँगा, जिससे बादशाह माँग रहा है। अतः यदि कुछ अपेक्षा ही रखनी है तो उसीसे रखनी चाहिये जो सारे जगत्का निर्माता, नियन्ता है, सर्वशक्तिमान्, सर्वसमर्थ और सर्वसंपन्न है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

हे अर्जुन! सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी शरणमें आ जा। मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गीता १८।६६)

हमारे जीवनमें इच्छाएँ अनन्त हैं, इनका कोई अन्त नहीं है तथा जितनी इनकी पूर्ति होती है, ये और बढ़ती ही रहती हैं। इनकी सन्तुष्टि अग्निमें घीका कार्य करती है। इनकी सन्तुष्टिमें क्षणिक भौतिक सुखोंकी मिथ्या अनुभूति तो होती है, पर जीवनमें शान्ति नहीं मिलती। सच्ची शान्ति इच्छाओंको भोगनेमें नहीं है, इनपर संयम बरतनेमें है। अपेक्षाएँ व्यक्तिको भिखारी बनाती हैं, दीन बनाती हैं, व्यक्तिको आत्मसम्मानका भान नहीं रहता। ये अपेक्षाएँ ही हैं, जो सामाजिक तथा पारिवारिक सम्बन्धोंमें भेद बना देती हैं। परिवारोंका विघटन अपेक्षाको लेकर होता है, बड़ोंका मान-सम्मान, घरकी सुख-शान्ति सब नष्ट हो जाती है और द्वेष तथा प्रतिशोध बढ़ता जाता है, यहाँतक कि मुकदमेबाजी और खून-खराबातक अपेक्षाओंको लेकर होता है।

सामान्य व्यक्ति स्वभावतः अहंवादी होता है। अपने सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्ति, सखा, मित्र तथा परिवारजनसे अपने अहंकी तुष्टिकी अपेक्षाएँ रखता है। वह यह चाहता है कि हर व्यक्ति उसकी परवाह करे, उसे मान-सम्मान दे। यह मान-बड़ाईकी इच्छा, यह लोकैषणा ही अशान्तिका प्रमुख कारण है। गीताका अमर सन्देश है कि मनुष्य अपना स्वाभाविक कर्म फलकी अपेक्षा न रखते हुए करे, इससे सफल-असफल होनेपर सुख-दुःखकी अनुभूति नहीं होगी। इससे अकल्पनीय सुख तथा सन्तोषकी अनुभूति होती है। यही प्रभुकी सच्ची सेवा एवं आराधना भी है।

हीरेकी तरह कीमती कैसे बनें

(श्रीसीतारामजी गुप्ता)

हीरा बहुत कीमती होता है, इसमें सन्देह नहीं। पिछले दिनों जेनेवामें हुई नीलामीमें गोलकुण्डाकी खानोंसे निकला ७६ कैरेटका एक भारतीय हीरा एक अरब अठ्ठारह करोड़ रुपयेमें बिका। हीरा अनमोल होता है। गुणोंसे सम्पन्न व्यक्तिकी तुलना भी कई बार हीरेसे की जाती है। एक व्यक्ति भी हीरा ही होता है यदि उसमें हीरेकी तरह कुछ गुण हों, कुछ उपयोगिता हो। वे कौनसे गुण हैं, जो एक व्यक्तिको हीरेकी श्रेणीमें ला देते हैं? यह जाननेसे पहले ये जाननेका प्रयास करते हैं कि वे कौनसे गुण हैं जो एक हीरेको अनमोल बना देते हैं।

हीरा एक अत्यन्त कीमती पत्थर है, जिसकी कीमतका निर्धारण अंग्रेजी लेटर 'सी' से प्रारम्भ होनेवाले तीन शब्दोंसे होता है। वे तीन शब्द हैं कट, क्लेयरिटी और कलर। हीरेकी तराश कैसी है, वह कितना साफ है तथा उसका रंग कैसा है। इन्हीं तीन बातोंपर हीरेकी कीमत निर्भर करती है। खानोंसे निकला कच्चा हीरा अनिश्चित आकारका होता है। उसे आकर्षक बनाने और चमक प्रदान करनेके लिये तराशना पड़ता है। तभी वह अपेक्षित आभा बिखेर सकता है अन्यथा नहीं।

हीरोंको तराशना कोई बच्चोंका खेल नहीं। हीरे तराशना एक कला है। सही प्रकारसे तराशे गये हीरोंकी ही बाजारमें अच्छी कीमत मिलना सम्भव है। इसके अलावा हीरेकी पारदर्शिता और रंगका भी उसकी कीमतके निर्धारणमें महत्वपूर्ण स्थान होता है, लेकिन हीरेकी पारदर्शिता और रंग उसे तराशनेके बाद ही उभरकर सामने आ पाते हैं। प्रश्न उठता है कि किसी मनुष्यको हीरेकी तरह कैसे तराशा जाय कि वह भी हीरेकी तरह ही अनमोल बन जाय ?

एक मूर्तिकारसे उसके एक प्रशंसकने पूछा कि वह इतनी सुन्दर मूर्तियाँ कैसे बना लेता है? मूर्तिकारने जवाब दिया कि मुर्ति जो पत्थरमें पहलेसे ही मौजूद

होती है। मैं तो केवल मूर्तिके ऊपर लगे अतिरिक्त पत्थरको हटाकर साफ कर देता हूँ। ठीक, यही स्थिति मनुष्यकी भी होती है। मनुष्य स्वयंमें ईश्वरकी एक अद्भुत कलाकृति है। जब मनुष्यकी सोच विकृत हो जाती है, तब ईश्वरीय कलाकृति दब जाती है। अपनी सोचको सही दिशा अथवा सकारात्मकता प्रदान करके हम पुनः ईश्वरीय कलाकृतिमें बदल जाते हैं।

जिस प्रकार एक कलाकार उचित प्रशिक्षण और निरन्तर अभ्यासके द्वारा मूर्तिके ऊपर लगे अतिरिक्त पत्थरको हटाकर साफ करके एक सुन्दर कलाकृति बनानेमें कुशलता प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार हम भी उचित प्रशिक्षण और निरन्तर अभ्यासके द्वारा अपने नकारात्मक भावोंसे छुटकारा पाकर प्रभावशाली व्यक्तित्वका विकास कर सकते हैं। नकारात्मक भावोंसे छुटकारा पानेका अर्थ है सकारात्मकताका विकास।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश आदि क्लेशोंकी समाप्ति अथवा नकारात्मक भावोंसे छुटकारा ही व्यक्तिकी वास्तविक तराश है। इससे व्यक्तिके मनमें हिंसाकी समाप्ति होकर करुणा और मैत्रीका विकास होता है और तभी उसका हृदय संकीर्णताका त्यागकर विस्तृत होता है, अधिकाधिक संवेदनशील बनता है। इसमें पारदर्शिता आती है और वह आकर्षक लगने लगता है। यही पारदर्शिता और आकर्षण उसे समाज और राष्ट्रके लिये उपयोगी और हीरेसे भी कीमती बना देता है, इसमें सन्देह नहीं।

संत कवि रहीमदासजी कहते हैं—

बड़े बड़ाई न करें बड़े न बोलें बोल।

रहिमन हीरा कब कहै लाख टका मेरो मोल॥

अर्थात् सद्गुण ही व्यक्तिको हीरेकी तरह मूल्यवान् बनाते हैं, अतः मूल्यवान् बननेके लिये व्यक्तिमें मानव-

जवाब दिया कि मूर्ति तो पत्थरमें पहलेसे ही मौजूद, मूर्तियोंका संजय आवश्यक है।

भगवान्‌के अवतार लेनेका कारण

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

भगवान्‌को अवतार लेना पड़े, ऐसी बात नहीं है; क्योंकि भगवान्‌ सर्वथा पूर्ण, सर्वशक्तिमान्‌ और स्वतन्त्र हैं। वे अपनी मौजसे अवतार लेते हैं।

शास्त्रोंमें भगवान्‌के अवतारके तीन हेतु बताये गये हैं—(१) साधुओंका परित्राण, (२) दुष्टोंका विनाश, (३) धर्मकी स्थापना। इनमें—से दुष्टोंका विनाश और धर्मकी स्थापना तो भगवान्‌ बिना अवतार लिये भी कर सकते हैं। यदि ये दोनों भगवान्‌के अवतारमें खास कारण होते, तो इस समय भी भगवान्‌का अवतार होना चाहिये था। धर्मका ह्रास इस समय कम नहीं है और दुष्टोंकी भी कमी नहीं है।

यदि उनकी लीलापर विचार करें, तो मालूम होता है कि भगवान्‌का अवतार अपनी रसमयी लीलाके द्वारा भक्तोंको रस प्रदान करनेके लिये और स्वयं उनके प्रेमका रस लेनेके लिये ही होता है। धर्मकी स्थापना और दुष्टोंका विनाश तो उनका आनुषंगिक कार्य है। उसमें भी प्रकारान्तरसे साधुओंका हित भरा रहता है।

साधु वही है, जो भगवान्‌को प्राप्त करना चाहता है, अपने जीवनको भगवत्परायण बनानेकी साधनामें लगा रहता है। किसी प्रकारका भेष बना लेनेका नाम साधु नहीं है।

भगवान्‌ जब अवतार लेते हैं, तो साधु पुरुषोंके घरोंमें ही लेते हैं। भगवान्‌ श्रीकृष्णके अवतारपर ही विचार कीजिये। उनका प्राकट्य वसुदेवजीके घरमें और माता देवकीके उदरसे हुआ। जो स्वयं प्रकाश और सर्वत्र बसनेवाला है, उसे 'वसुदेव' कहते हैं और प्रकाशमयी ब्रह्मविद्याका नाम 'देवकी' है। इससे यह मालूम होता है कि भगवान्‌ उन साधु पुरुषोंके घर जन्म लेते हैं, जो सर्वथा विशुद्ध और तत्त्वज्ञानी हैं, परन्तु उनको अपनी लीलाका, अपने प्रेमका रस प्रदान नहीं करते।

अपनी प्रेममयी लीलाका रस प्रदान करनेके लिये वे माता यशोदाकी गोदमें पधारते हैं। जो यश यानी प्रेम—रस प्रदान करे, उसको यशोदा कहते हैं और आनन्दका

ही दूसरा नाम 'नन्द' है।

इससे यह मामूल होता है कि भगवान्‌ अपने प्रेमी भक्तोंको अपनी प्रेममयी लीलाका रस प्रदान करके और उनके प्रेम—रसका स्वयं आस्वादन करके उन भक्तोंको आह्लादित करते हैं। यह काम बिना अवतार लिये पूरा नहीं हो सकता।

भगवान्‌की एक—एक लीलामें अनेक रहस्य भरे रहते हैं। वे एक ही लीलामें बहुतोंकी लालसा पूरी करते रहते हैं। उनकी प्रेममयी लीलाका रहस्य बड़े—बड़े बुद्धिमान्‌ नहीं समझ पाते। औरोंकी तो कौन कहें, साक्षात्‌ ब्रह्माजीको संदेह हो गया।

अघासुरको मारकर श्रीकृष्ण भगवान्‌ वनमें अपने बाल सखाओंके बीचमें बैठकर भोजन करने लगे, तो उस लीलाको देखकर ब्रह्माजी चकित हो गये। वे सोचने लगे कि—'साक्षात्‌ परमेश्वर क्या कभी इन गँवार ग्वालोकें बालकोंकी जूठन खा सकते हैं! यह क्या है? यह बालक अपनी खानेकी वस्तु दूसरेको देता है और दूसरे बालककी लायी हुई खानेकी वस्तुको स्वयं ग्रहण करता है।'

इस मोहमें पड़कर ब्रह्माजी भगवान्‌की परीक्षा करनेके लिये बछड़ोंको उठाकर ले गये। इधर बालकोंका मन भगवान्‌से हटकर बछड़ोंकी ओर गया। वे बोले—'बछड़े दिखलाई नहीं दे रहे, कहीं दूर चले गये हैं।' भगवान्‌ यह कैसे सहन कर सकते हैं कि उनका प्रेमी किसी और—को देखे, उनको छोड़कर उसका मन दूसरी जगह चला जाय? अतः उन्होंने सखाओंसे कहा—'मित्रो! तुम लोग यहीं रहो, मैं अभी बछड़ोंको ले आता हूँ।'

श्यामसुन्दर उधर गये और ब्रह्माजी उन बालकोंको बेहोश करके वहाँ से उठाकर पर्वतकी गुफामें रख आये। भगवान्‌से मन हटते ही ग्वालबालोंको एक वर्ष उनसे अलग होना पड़ा।

इधर गायेँ तथा गोप—गोपियोंके मनमें यह लालसा बढ़ रही थी कि क्या कभी वे दिन आयेंगे कि जब

श्यामसुन्दर यशोदा मैया की भाँति हमारे स्तनोंका दुग्धपान करेंगे और उसी प्रकार हमारी गोदमें खेलकर अपनी प्रेममयी बाल-लीलाका रस प्रदान करेंगे! उनकी उस लालसाको पूर्ण करनेके लिये भगवान् स्वयं बालक एवं बछड़े बने। उन्होंने गायोंको प्रेमरस प्रदान किया तथा उनका प्रेमरस दुग्धरूपमें पान किया। गोप-गोपियोंकी गोदमें खेलकर उनको पुत्र-स्नेहका रस प्रदान किया। एक वर्षतक वे उस मधुर प्रेमरसका आस्वादन करते रहे।

जब ब्रह्माने देखा कि ब्रजका काम तो उसी प्रकार चल रहा है, श्यामसुन्दर पहलेकी भाँति ही उन ग्वाल-बालोंके साथ भोजन कर रहे हैं और खेल रहे हैं तथा जिनको मैं चुरा लाया था, वे सब गुफामें सो रहे हैं, तब उनको भगवान्की महिमाका दर्शन हुआ और उनका समस्त अभिमान गल गया। भगवान्के चरणोंमें मस्तक रखकर उन्होंने क्षमा माँगी



और भगवान्की उन्होंने स्तुति की।

एक ही लीलामें भगवान्ने अपने ऐश्वर्य और माधुर्यका प्रदर्शन किया। यह काम बिना अवतारके कैसे हो सकता था? एक ओर ब्रह्माके अभिमानका नाश, उसीके साथ-साथ ग्वाल-बालोंको चेतावनी और गायों एवं गोप-गोपियोंकी प्रेम-लालसा की पूर्ति। यह काम तो अवतार लेकर ही किया जा सकता है।

जब भगवान् श्रीकृष्ण छः दिनके हुए थे, उस समय भी उन्होंने एक ही साथ ऐश्वर्य और माधुर्य तथा न्याय और दयालुताका भाव दिखाया था। पूतना, जो

घोर पापिनी और बालकोंका नाश करनेवाली थी, जब सुन्दर धायका कपट वेष बनाकर भगवान्के पास गयी एवं मनमें दूषित भाव रखकर ऊपरसे प्रेमका भाव दिखाकर उनको गोदमें उठा लिया और अपना विषभरा



स्तन श्यामसुन्दरके मुखारविन्दमें दे दिया, तब भगवान्ने उसके मातृ-स्नेहकी रक्षा करनेके लिये तो उसका दूध पिया; क्योंकि वह उनके प्राण लेनेके लिये आयी थी, इसलिये दूधके साथ-साथ उसके प्राण भी पी लिये। भगवान्के स्पर्शसे उसका कपट नाश हो गया और वह अपने असली रूपमें आ गयी। उसके सारे शरीरमें सुगन्ध हो गयी। भगवान् उसके शरीरपर खेलने लगे और उसे माताकी गति प्रदान की।

इस प्रकारकी लीला भगवान् बिना अवतारके कैसे कर सकते थे? उनकी हरेक लीलामें अनन्त रस और अनन्त रहस्य भरा हुआ है? उनके प्रेमी भक्त ही उसका रस ले सकते हैं।

भगवान्का अवतार नित्य है। उनका लीलाधाम, उनके माता-पिता, उनके सखा और सखियाँ सभी चिन्मय प्रेमसे ही बने हुए हैं। उनमें कोई भी भौतिक वस्तु नहीं हैं। भगवान्के प्रेमी भक्तोंमें भौतिक भाव नहीं रहता।

भगवान्के प्रेमी भक्तोंका आज भी उनकी दिव्य लीलामें प्रवेश होता है और वे उनके प्रेम-रसका आस्वादन करते रहते हैं। यदि भगवान्का अवतार न होता, तो इसकी पूर्ति नहीं हो सकती थी।

(पं० श्रीमहेन्द्रनाथजी भट्टाचार्य)



वराहनगर कलकत्तेसे उत्तर तीरपर है। स्वामीजीके घरका आँगन सदा सर्द रहता था। स्वामीजी एक कोठरीमें कम्बल बिछाकर बैठे ग्रन्थादि देखा करते, साधन-भजनके समय दरवाजा बन्द कर लेते। दोपहरको एक बार दरवाजा खोलते। भोजनके लिये कोई दे जाता तो खा लेते, नहीं तो

गोमूत्रका चमत्कार

[गोमूत्र एवं वनौषधि-चिकित्सासे गुर्देके रोगोंमें आश्चर्यजनक लाभ]

(श्रीभगवतीलालजी हींगड)

हम गुर्देके बारेमें बहुत कम जानते हैं। इसे अंग्रेजीमें किडनी, हिन्दीमें गुर्दा और संस्कृतमें वृक्क कहा जाता है। किडनीका मुख्य कार्य है—रस एवं रक्तमें मिले विजातीय और अनावश्यक द्रव्यों एवं विकारोंको मूत्र-मार्गद्वारा शरीरसे बाहर निकालना।

किडनी वास्तवमें रस-रक्तका शुद्धीकरण करनेवाली एक प्रकारकी ग्यारह से०मी० लम्बी काजूके आकारकी छलनी है। जो पेटके पृष्ठभागमें मेरुदण्डके दोनों ओर स्थित होती है।

किडनीका विशेष सम्बन्ध हृदय, फेफड़े, यकृत और तिल्लीके साथ होता है। ज्यादातर हृदय एवं वृक्क परस्पर सहयोगके साथ कार्य करते हैं। आजकल किडनीके रोगियोंकी संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसका मुख्य कारण मटर, सेम, दालें-जैसे प्रोटीनयुक्त आहारका अतिरेक; मैदा, शक्कर, बेकरीकी चीजोंका अधिक प्रयोग; चाय, काफी-जैसे उत्तेजक पेय, शराब एवं ठण्डे पेय, आधुनिक एलोपैथिक दवाइयोंका ज्यादा प्रयोग, जीवनी शक्ति एवं रोगप्रतिकारक शक्तिका अभाव, आँतोंमें संचित मल, शारीरिक परिश्रमका अभाव, अशुद्ध हवा एवं उच्च रक्तचाप तथा हृदयरोगोंमें लम्बे समयतक की जानेवाली दवाइयोंका सेवन, आयुर्वेदिक परंतु अशुद्ध पारेसे बनी दवाइयोंका सेवन; तम्बाकू एवं ड्रग्सके सेवनकी आदत; दही, तिल, नया गुड़, मिठाई, वनस्पति, घी, श्रीखण्ड, मांसाहार, फ्रूटजूस, इमली, टोमैटो-केचप, अचार, केरी, खटाई आदि सब किडनी-दर्दके कारण हैं। किडनीका इलाज प्रायः सम्भव नहीं होनेसे दूसरे गुर्दे लगाने पड़ते हैं, लेकिन यह जरूरी नहीं है कि जो गुर्दे लगाये जा रहे हैं, वे आपके शरीरको सहन हो पायेंगे। इसपर खर्च भी लगभग छःसे आठ लाख रुपये होता है, जो हरेकके वशकी बात नहीं है। अगर किडनीका प्रत्यारोपण करा भी लिया जाय तो इसमें हमेशा इन्फेक्शन होनेका डर बना रहता है। पर निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है। गुर्देसे सम्बन्धित बीमारीका इलाज गोमूत्र-चिकित्सा एवं वनौषधिये

सम्भव हुआ है, ऐसे रोगियोंपर गोमूत्र-चिकित्साका चमत्कारी लाभ हुआ है। अगर किडनीमें सूजन है या उसपर रक्त जम गया है तो इसका इलाज आप गोमूत्र-चिकित्सा-पद्धतिसे किसी अनुभवी वैद्यसे करा सकते हैं।

किडनी खराब होनेके प्रारम्भिक लक्षण हैं—हाथ-पैर और चेहरेपर सूजन आना, पेशाब कम आना या जल्दी-जल्दी आना तथा ब्लड प्रेशर बढ़ जाना, कमर एवं पीठमें दर्द बना रहना, हाथ-पैर ठण्डा रहना, लीवर और तिल्लीमें दर्द, अम्लपित्त, सिर तथा गर्दनमें पीड़ा, भूख नष्ट होना, बहुत प्यास लगना, कब्ज रहना आदि। ये सभी लक्षण सभी मरीजोंमें विद्यमान हों—यह जरूरी नहीं है। अगर ऐसा हो तो खून और पेशाबकी जाँच करायें। अगर पेशाबमें प्रोटीन हो तो इसका मतलब है कि किडनीमें सूजन है। खूनकी जाँच करानेपर क्रेटेनिन एवं यूरिया दोनों बढ़े हुए हों तो सम्भव है कि आपकी किडनी फेल हो गयी हो या होनेवाली हो। गोमूत्र-चिकित्सा किडनी-रोगके इलाजमें कारगर सिद्ध हुई है। इससे गुर्देका इलाज तो होता ही है, साथ ही इस इलाजसे गुर्देकी कार्यक्षमता भी बढ़ जाती है। किडनी फेल होनेपर किडनीमें पायी जानेवाली खूनकी नलियाँ बन्द हो जाती हैं, उन्हें गोमूत्र-अर्क या पंचगव्य घृत ठीक कर सकते हैं।

किडनी खराब होनेपर कुछ परहेज रखना भी आवश्यक हो जाता है। जैसे कि ऐसा खाना नहीं खाये जिसमें प्रोटीनकी मात्रा अधिक हो, यथा—दाल, पनीर, अण्डे, मांस, चना, सोयाबीन, राजमा आदि। रसीले फल भी नहीं खाये, जैसे—मौसमी, अनार, अंगूर, नारंगी, इमली, केरीका अचार आदि। सब्जियाँ जो भी खाये उसे काटकर कुछ देर गरम पानीमें रख दे फिर पानीसे निकालकर पकाये और पानी फेंक दे तथा नमक कम काममें ले। फलोंमें सेव और पपीतेका सेवन कर सकते हैं। गेहूँकी जगह जौकी रोटी खाये। जहाँतक हो सके, मौसमी बीमारीसे बचे। सर्दीमें ज्यादा देर बाहर न रहे, गर्मीमें धूपसे बचे, पानी भी पिये तो उबालकर ठण्डा करके काममें ले। समय-समयपर खून एवं पेशाबकी जाँच भी करानी चाहिये।

आजका जगत् जिस सभ्यताकी ओर बढ़ रहा है, उसमें असत्य, लूट-पाट, चोरी, व्यभिचार, अनाचार,

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वदि
प्रतिपदादिनमें ११।८ बजेतक	शुक्र	पू०षा० दिनमें २।३७ बजेतक	२९ जून	मकरराशि रात्रिमें ९।१७ बजेसे।
द्वितीया " १।९ बजेतक	शनि	उ०षा० सायं ५।१५ बजेतक	३० "	भद्रा रात्रिमें २।८ बजेसे।
तृतीया " ३।७ बजेतक	रवि	श्रवण रात्रिमें ७।४९ बजेतक	१ जुलाई	भद्रा दिनमें ३।७ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चंद्रोदय रात्रिमें ९।१२ बजे।
चतुर्थी " ४।५३ बजेतक	सोम	धनिष्ठा " १०।१० बजेतक	२ "	कुम्भराशि दिनमें ८।५९ बजेसे, पंचकारम्भ दिनमें ८।५९ बजे।
पंचमी सायं ६।२२ बजेतक	मंगल	शतभिषा " १२।११ बजेतक	३ "	x x x
षष्ठी रात्रिमें ७।२२ बजेतक	बुध	पू०भा० " १।४४ बजेतक	४ "	भद्रा रात्रिमें ७।२२ बजेसे, मीनराशि दिनमें ७।२१ बजे।
सप्तमी " ७।५४ बजेतक	गुरु	उ०भा० " २।५० बजेतक	५ "	भद्रा दिनमें ७।३८ बजेतक, मूल रात्रिमें २।५० बजेसे।
अष्टमी " ७।५५ बजेतक	शुक्र	रेवती " ३।२४ बजेतक	६ "	मेषराशि रात्रिमें ३।२४ बजेसे, पंचक समाप्त रात्रिमें ३।२४ बजे, शीतलाष्टमी, पुनर्वसुका सूर्य रात्रिमें ८।२० बजे।
नवमी " ७।२६ बजेतक	शनि	अश्वनी " ३।२९ बजेतक	७ "	मूल समाप्त रात्रिमें ३।२९ बजेसे।
दशमी सायं ६।२८ बजेतक	रवि	भरणी " ३।७ बजेतक	८ "	भद्रा प्रातः ६।५७ बजेसे सायं ६।२८ बजेतक।
एकादशी दिनमें ५।४ बजेतक	सोम	कृत्तिका " २।२२ बजेतक	९ "	वृषराशि दिनमें ८।५५ बजेसे, योगिनी एकादशीव्रत (सबका),
द्वादशी " ३।२० बजेतक	मंगल	रोहिणी " १।१६ बजेतक	१० "	भौमप्रदोषव्रत।
त्रयोदशी " १।१६ बजेतक	बुध	मृगशिरा " ११।५५ बजेतक	११ "	भद्रा दिनमें १।१६ बजेसे रात्रिमें १२।८ बजेतक, मिथुनराशि दिनमें १२।३५ बजेसे।
चतुर्दशी " ११।१ बजेतक	गुरु	आर्द्रा " १०।२२ बजेतक	१२ "	श्राद्धादिकी अमावस्या।
अमावस्या " ८।३६ बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु " ८।४४ बजेतक	१३ "	कर्कराशि दिनमें ३।९ बजेसे, अमावस्या।

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण-दक्षिणायन, ग्रीष्म-वर्षा-ऋतु, आषाढ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ६।७ बजेतक	शनि	पुष्य रात्रिमें ७।३ बजेतक	१४ जुलाई	श्रीजगदीश रथयात्रा, मूल रात्रिमें ७।३ बजेसे।
तृतीया रात्रिमें १।७ बजेतक	रवि	आश्लेषा सायं ५।३२ बजेतक	१५ "	सिंहराशि सायं ५।३२ बजेसे।
चतुर्थी " ११।४ बजेतक	सोम	मघा दिनमें ४।० बजेतक	१६ "	भद्रा दिनमें १२।१० बजेसे रात्रिमें ११।४ बजेतक, श्रीवैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल समाप्त दिनमें ४।० बजे।
पंचमी " ९।५ बजेतक	मंगल	पू०फा० " २।४४ बजेतक	१७ "	कन्याराशि रात्रिमें ८।३० बजेसे, कर्कसंक्रान्ति दिनमें ९।२९ बजे, दक्षिणायन प्रारम्भ, वर्षाऋतु प्रारम्भ।
षष्ठी " ७।२८ बजेतक	बुध	उ०फा० " १।५० बजेतक	१८ "	श्रीस्कन्दषष्ठीव्रत
सप्तमी सायं ६।१२ बजेतक	गुरु	हस्त " १।१३ बजेतक	१९ "	भद्रा सायं ६।१२ बजेसे, तुलाराशि रात्रिमें १।८ बजेसे।
अष्टमी " ५।२३ बजेतक	शुक्र	चित्रा " १।४ बजेतक	२० "	भद्रा प्रातः ५।४८ बजेतक, पुष्यका सूर्य रात्रिमें ८।४७ बजे।
नवमी " ५।२ बजेतक	शनि	स्वाती " १।२२ बजेतक	२१ "	×
अष्टमी " ५।१२ बजेतक	रवि	विशाखा " २।१० बजेतक	२२ "	वृश्चिकराशि प्रातः ७।५८ बजेसे।
एकादशी " ५।५६ बजेतक	सोम	अनुराधा " ३।३१ बजेतक	२३ "	भद्रा प्रातः ५।३५ बजेसे सायं सायं ५।५६ बजेतक, श्रीहरिशयनी एकादशीव्रत (सबका), मूल दिनमें ३।३१ बजेसे।
द्वादशी रात्रिमें ७।५ बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा सायं ५।१७ बजेतक	२४ "	धनुराशि सायं ५।१७ बजेसे।
त्रयोदशी " ८।४० बजेतक	बुध	मूल रात्रिमें ७।२९ बजेतक	२५ "	प्रदोषव्रत, मूल समाप्त रात्रिमें ७।२९ बजे।
चतुर्दशी " १०।३२ बजेतक	गुरु	पू०षा० " ९।५६ बजेतक	२६ "	भद्रा रात्रिमें १०।३२ बजेसे, मकरराशि रात्रिशेष ४।३५ बजे।
पूर्णिमा " १२।३३ बजेतक	शुक्र	उ०षा० " १२।३३ बजेतक	२७ "	भद्रा दिनमें ११।३३ बजेतक, पूर्णिमा, गुरुपूर्णिमा, खण्डचन्द्रग्रहण

Hinduism Discord Server <https://discord.gg/dharmadharma>

MADE WITH LOVE BY Avinash/Shiv

कृपानुभूति

मन्त्रकी अद्भुत शक्तिका प्रत्यक्ष चमत्कार

मन्त्रमें अद्भुत शक्ति होती है। मन्त्र बीजरूपमें होते हैं, जिनमें वृक्ष-जैसा विशाल आकार छुपा रहता है, जो अनेक मनोवांछित फलोंको प्रदान करनेवाले होते हैं। ऐसा ही एक मन्त्र है, जिसके प्रभावसे पूर्वजन्मके कर्म-बन्धनसे मुक्ति प्राप्त हुई है। घटना इस प्रकार है—

बात मध्यप्रदेशके अशोकनगर जिलेके ग्राम सोवतकी है। मेरे पिताजीके छोटे भाई (मेरे चाचाजी)-की उम्र लगभग १६ वर्ष थी, एक दिन वे अपने मित्रोंके साथ इमलीके वृक्षपर इमली खाने चढ़े हुए थे, उसी समय सर्पने उनके हाथके अँगूठेमें डस लिया। जैसे ही सभी मित्रोंने देखा तो इस घटनाको देखकर घबड़ा गये और उनको घर ले आये। वे बहुत धार्मिक प्रवृत्तिके थे, अतः उन्होंने मन्दिरमें जानेके लिये कहा, वहीं बैठे-बैठे भगवान्का नाम जपते रहे; क्योंकि विष बहुत अधिक फैल चुका था, शरीर नीला पड़ चुका था, कुछ समयमें ही प्राण निकलने वाले थे, इसलिये इलाज करानेसे मना कर दिया। फिर भी अनेक वैद्योंने झाड़ा-फूँकी इलाज किया, लेकिन बचानेमें सफल नहीं हो सके। इस घटनाके कुछ समय बाद हमारे घरपर कोई अज्ञात संन्यासी आये, जो पहले कभी नहीं आये थे। उन्होंने कहा कि तुम सभी इतने दुखी क्यों हो ? इतनेमें मेरे दादाजी रोने लगे और पुत्र-मृत्युका कारण बताया। संन्यासीने कहा तुम चिन्ता न करो, तुम्हारा मरा हुआ लड़का पुनः इसी घरमें तुम्हारे बड़े बेटेकी पत्नीसे जन्म लेनेवाला है। कुछ ही महीने बाद मेरा जन्म हो जाता है, लेकिन इस बातको सभी लोग भूल जाते हैं। मैं जब लगभग १०-११ वर्षका हो गया था, उस समय गाँवके कई लोग मुझे देखकर कहने लगे कि तुम अपने चाचाजीके जैसे लगते हो, उन्हींके जैसे सभी कार्य भी करते हो, लेकिन मुझे विश्वास नहीं होता था। गाँवके ही एक सूरदासजी (अन्धे व्यक्ति) मेरी आवाजको सुनकर कहा करते थे कि तुम्हारी आवाज हरनाम चाचाजी-जैसी ही लगती है। तब मुझे विश्वास हुआ कि अन्धेको आवाज सुननेका अनुभव सही होता है; क्योंकि उन्होंने उनको देखा नहीं बल्कि आवाज सुनी थी। इसका सबसे बड़ा

एक और कारण बचपनसे ही मेरे स्वप्नमें सर्पका आना था। मैं कभी नींदमें 'साँप-साँप' चिल्लाता था, कभी साँप मुझे डस रहे हैं तो कभी जाते हुए दिखायी दे रहे हैं। ऐसा हमेशा होता रहा। कभी ऐसी रात नहीं जाती थी; जिसमें मुझे वे दिखायी न दें, हर रात्रिमें साँप स्वप्नमें आते थे।

मैं अभी वर्तमानमें मध्यप्रदेशके ही नरसिंहपुर जिलेमें पदस्थ हूँ। एक दिन नरसिंहपुरके ही एक प्रसिद्ध विद्वान् महापुरुष श्री दुबेजीसे मेरी भेंट हुई। यह घटना मेरे द्वारा उन महापुरुषको सुनायी गयी, तब उन्होंने कहा स्वप्नमें प्रतिदिन सर्पका आना ठीक नहीं होता। इस बातसे तुम्हारा पूर्व जन्मोंमें सर्पोंसे विरोध होना प्रतीत हो रहा है या पूर्व जन्मोंसे सर्पोंका कुछ सम्बन्ध शेष रहनेके कारण वे इस जन्ममें भी तुमको स्वप्नमें सता रहे हैं। मेरे द्वारा इसके निवारणहेतु उन महापुरुषसे निवेदन किया गया कि इससे कैसे मुक्ति मिले ? तब उन्होंने मुझे एक नागमन्त्र दिया, जिसमें नौ नागोंका नाम था और कहा कि तुम इस मन्त्रको प्रतिदिन पूर्ण विश्वास एवं श्रद्धाभावसे जप करते रहना, कुछ समयमें सर्पके स्वप्न आना बन्द हो जायँगे।

वह मन्त्र इस प्रकार है—

अनन्तं वासुकिं शेषं पद्मनाभं च कम्बलम् ।

शंखपालं धार्तराष्ट्रं तक्षकं कालियं तथा ॥ १ ॥

एतानि नव नामानि नागानां च महात्मनाम् ।

सायंकाले पठेन्नित्यं प्रातःकाले विशेषतः ॥ २ ॥

तस्मै विषभयं नास्ति सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ३ ॥

इस मन्त्रके प्रभावसे प्रथम दिनसे ही सर्पोंके स्वप्न आना बन्द हो गये। जीवनमें मैंने ऐसा चमत्कार पहली बार देखा, जो अद्भुत, आश्चर्यजनक एवं विस्मयकारी था। इस मन्त्रके निरन्तर जपसे आजतक मुझे स्वप्नमें सर्प नहीं दिखे। मित्रो! मन्त्रोंकी महिमा निराली होती है। यह मैं समझ चुका हूँ। मन्त्रोंके प्रभावसे मनुष्य अपने दुःखों (आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक)-से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।—डॉ० राजकुमार रघुवंशी

पढ़ो, समझो और करो

आदर्श मित्र

(२)

पुनीत वाराणसीवासी हिन्दी-साहित्यके युगप्रवर्तक 'दूजो हरिचन्द' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र खड्गविलास-प्रेसके संस्थापक, रेपुरानिवासी बाबू श्रीरामदीनसिंहजीके परम मित्र थे। भारतेन्दुजी बड़े उदार थे, उनकी उदारताकी अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। अपने फक्कड़ स्वभावकी वजहसे वे प्रायः ऋणग्रस्त हो जाते थे। उनका सदा ही मुक्तहस्त रहता था। इसमें उनकी सारी सम्पत्ति समाप्त हो गयी; बल्कि डेढ़ लाख रुपयोंका ऋण एक सज्जनका रह गया, जिसकी चर्चा उन्होंने अपने भाई-भतीजों या दौहित्रसे भी नहीं की थी।

एक दिन उन्होंने अपने अभिन्न मित्र बाबू रामदीन सिंहको बुलाकर उनसे सारी बातें बतायीं और कहा कि 'जिनके रुपये हैं, वे सज्जन कभी मुझसे माँगने नहीं आये। इस कारण मुझे इस ऋणके न चुकानेका और भी बड़ा दुःख है।'

भारतेन्दुके फक्कड़ स्वभावसे परिचित बाबूसाहबने तुरंत कहा—'अच्छा, तो यह ऋण चुकाना मेरे जिम्मे रहा। आप इसकी तनिक भी चिन्ता न करें। इस ओरसे बिल्कुल निश्चिन्त रहकर भगवत्-स्मरण करें।'

बाबू रामदीनसिंहकी डेढ़ लाख रुपयेका ऋण चुका देनेकी बात सुनकर लाखोंकी सम्पत्ति लुटा देनेवाले भारतेन्दुके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। इसी दशामें उन्होंने कागजका एक टुकड़ा बाबू रामदीनसिंहके हाथोंमें दिया, जिसपर लिखा था—

'मेरी सारी पुस्तकों (१७५)-के प्रकाशनका सर्वाधिकार खड्गविलास प्रेसको ही है।'

बाबू रामदीनसिंहने उसे पढ़ा और तुरंत फाड़कर उन्हींके सामने फेंक दिया और कहा—'यह तो मित्रता निभाना नहीं हुआ, व्यापार हुआ।'

ये दोनों आदर्श मित्र धन्य थे। धन्य है इस प्रकारकी निःस्वार्थ मित्रता!

('पद्मभूषण' आचार्य श्रीशिवपूजनसहायके कथनके आधारपर)

गरीब महिलाकी ईमानदारी

घटना इस प्रकार है—मुझे कुछ प्लास्टिकके डिब्बों तथा स्टीलके बर्तनोंकी खरीदारी करनी थी और इसके लिये मैं अपने पौत्रके साथ सोनिया विहार-स्थित मार्केटमें एक दुकानपर गया, जहाँपर अष्टमी, नवमीकी वहजसे काफी भीड़ थी। दुकानदारको मैंने अपना सामान नोट कराया तो उसने कहा कि आपको आधा घंटे प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। मैं दुकानमें एक तरफ खड़ा हो गया।

तभी मेरी दृष्टि एक महिलापर पड़ी, जो दुकानदारसे दो-चार मिनट अपनी भाषामें झगड़ती और फिर एक तरफ बैठकर रोने लगती। ऐसा तीन-चार बार हुआ। दुकानदारको कोई परवाह नहीं थी। लेकिन उस महिलाके आँसू देखकर मेरी व्याकुलता बढ़ती गयी और एक समय ऐसा आया कि मैं अपने आपको रोक नहीं पाया और उससे जानना चाहा कि आखिर हुआ क्या है? परेशानीकी वजहसे उसकी भाषा स्पष्ट समझ नहीं आ रही थी... लेकिन जो कुछ मैं समझ पाया उसके अनुसार ऐसा लगा कि महिलाने अपना सामान खरीदा और भुगतान करते समय उसने दुकानदारको एककी जगह ५०० रुपयेके दो नोट गलतीसे दे दिये और अब वह ५०० रुपयेका एक नोट वापस लेना चाहती है। दुकानदार इस बातको कतई माननेको तैयार नहीं था और बार-बार कह रहा था कि एक नोट तुमसे कहीं गिर गया होगा। महिला कुछ बोलती और फिर बैठकर रोने लगती।

वेशभूषासे महिला गरीब परिवारकी लग रही थी। लेकिन उसकी दृढ़ता तथा आँसू उसकी ईमानदारीकी गवाही दे रहे थे। मुझे उसकी सहायता करनेकी इच्छा हुई और मैंने ५०० रुपयेका एक नोट निकालकर उसको देना चाहा तो वह और जोरसे रोने लगी। उसने उस नोटको काफी प्रयत्न करनेके पश्चात् भी मुझसे नहीं

सत्संगमें तल्लीन रहता था।

एक दिन उसने सेठसे जगन्नाथपुरी जानेकी इच्छा व्यक्त की और सेठजीसे एक माहका अवकाश माँगा। सेठजीने उसे छुट्टी देते हुए कहा—‘भाई, मैं तो हूँ संसारी आदमी, हमेशा दुकानके काम-धन्धेमें लगा रहता हूँ। इसी कारण तीर्थयात्रापर नहीं जा पाता। प्रभु जगन्नाथ मुझे क्षमा करेंगे। तुम जा ही रहे हो तो यह ५० का पत्ता मेरी ओरसे जगन्नाथ स्वामीको भेंट कर देना।’

भगत सेठजीसे ५० का पत्ता लेकर जगन्नाथपुरीको चल दिया। कई दिनकी पैदल यात्रा करनेके पश्चात् वह जगन्नाथधाम पहुँच गया। मन्दिरकी ओर प्रस्थान करते समय मार्गमें देखा कि कुछ लोग प्रभुका कीर्तन बड़े आनन्दमें कर रहे थे। सभीके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह रही थी। जोर-जोरसे हरिनामके जयकारोंसे वातावरण गूँज रहा था। वह व्यक्ति भी प्रभुनामका रसास्वादन ले रहा था।

फिर उस व्यक्तिने देखा भूखके कारण कुछ सन्तोंका स्वर धीमा पड़ गया था। सेठजीके गुमाशतेने सोचा क्यों न सेठके धनसे इनको अन्न-जल प्रदान कर दूँ। उसने इसी पचास रुपयेमें-से अड़तालीस रुपयेसे भोजनकी व्यवस्था कर दी, पुनः दो रुपये स्वामी जगन्नाथजीके चरणोंपर अर्पण कर दिये और मन-ही-मन निश्चय किया कि जब सेठजी पूछेंगे तो मैं कहूँगा कि पैसे मैंने जगन्नाथस्वामीजीको अर्पण कर दिये हैं। यह झूठ भी नहीं होगा और सेठका काम भी हो जायगा।

दुकानदारने मेरा नोट धन्यवादके साथ वापस किया और काफी कोशिश करनेके पश्चात् भी महिलाको दिये १०० रुपये भी नहीं लिये, जिन्हें मैं देना चाहता था।

—एम०एल० शर्मा

(३)

प्रभु जगन्नाथजीसे भेंट

भक्तने स्वामी जगन्नाथजीके मन्दिरमें प्रवेश किया। प्रभुकी छवि निहारते हुए अपने हृदयमें उनको विराजमान किया और मुखसे बोला—स्वामीजी! यह दो रुपये सेठके नामके आपको अर्पण करता हूँ, कृपया सेठजीकी भेंट स्वीकार करें।

अगली रात सेठको स्वप्नमें श्रीजगन्नाथजीके दर्शन हुए, उन्होंने सेठको आशीर्वाद दिया और बोले—मैंने तेरे अडतालीस रुपये सहर्ष स्वीकार किये। यह कहकर

Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MADE WITH LOVE BY AVINASH/SHARAD

ब्रज-रसके सच्चे रसिक, ब्रजभावमें पारंगत श्रीरूपके स्वभावमें परम दैन्य, आत्यन्तिक सहिष्णुता, नित्य श्रीकृष्णगत चित्त होनेके कारण अन्यान्य लौकिक व्यवहारोंकी ओर उपेक्षा थी। भट्टजीने श्रीरूप गोस्वामीजीकी भूल बतायी थी, इससे उन्हें क्षोभ होना तो दूर रहा, उन्हें लगा कि सचमुच मेरी कोई भूल होगी, भट्टजी उसे सुधार देंगे। श्रीजीव गोस्वामीने शास्त्रार्थमें पण्डितजीको हरा दिया, इससे श्रीरूप गोस्वामीको सुख नहीं मिला। उन्हें संकोच हुआ और अपने प्रियतम शिष्यपर शासन करना पड़ा। वे श्रीजीव गोस्वामीके पाण्डित्यको जानते थे, पर श्रीजीवमें जरा भी पाण्डित्यका अभिमान न रह जाय, पूर्ण दैन्य आ जाय—वे यह चाहते थे और इसीसे उन्होंने श्रीजीवको चले जानेकी आज्ञा दी। यह उनका महान् शिष्यवात्सल्य था और इसी रूपमें बिना किसी क्षोभके अत्यन्त अनुकूलभावसे श्रीजीवने गुरुदेवकी इस आज्ञाको शिरोधार्य किया। वे बिना एक शब्द कहे तुरंत पूर्वकी ओर चल दिये तथा यमुनाके नन्दघाटपर जाकर निर्जन स्थानमें वास करने लगे। वे कभी कुछ खा लेते, कभी उपवास करते और भजनमें लगे रहते। श्रीसनातन गोस्वामीद्वारा उनकी यह दशा जानकर श्रीरूपगोस्वामी करुणासे द्रवित हो उठे और उन्होंने पुनः जीवगोस्वामीको अपने पास बुला लिया तथा समझाया कि भैया! सभीके हृदयमें परमात्मा श्रीकृष्णका वास है, अतः इस बातकी विशेष सावधानी रखनी चाहिये कि प्रभुप्रदत्त पाण्डित्यसे किसीके मनको कष्ट न पहुँचे।

‘ श्रीराधामाधव-अङ्क ’

यः कृष्णः सापि राधा च या राधा कृष्ण एव सः।

एकं ज्योतिर्द्विधा भिन्नं राधामाधवरूपकम्॥

जो श्रीकृष्ण हैं, वे ही श्रीराधा हैं और जो श्रीराधा हैं, वे ही श्रीकृष्ण हैं। श्रीराधामाधवके रूपमें एक ही ज्योति दो प्रकारसे प्रकट है।

सच्चिन्मयी जगदम्बा श्रीराधा सच्चिदानन्दधन परमात्मप्रभु श्रीमाधवकी चिद्विलासरूपा आह्लादिनी शक्ति हैं। श्रीराधिकाजी प्रेममयी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। जहाँ आनन्द है, वहीं प्रेम है और जहाँ प्रेम है, वहीं आनन्द है। आनन्दसागरका घनीभूत विग्रह श्रीकृष्ण हैं और प्रेमरससारकी घनीभूत मूर्ति श्रीराधारानी हैं। श्रीराधारानी श्रीकृष्णकी जीवनरूपा हैं और श्रीकृष्ण ही श्रीराधाके जीवन हैं। श्रीराधारानी महाभावस्वरूपा हैं और प्रियतम श्रीकृष्णको आह्लाद प्रदान करती रहती हैं। उपासना-जगत्में भक्तोंकी अभिलाषापूर्तिके लिये श्रीराधामाधवका युगल अवतरण हुआ है। नित्य गोलोक भगवान् माधवका आनन्दधाम है तो शाश्वत वृन्दावन भगवती राधाकी नित्य क्रीडास्थली है। जैसे भगवान्का अवतरण होता है, वैसे ही नित्यधामका भी इस प्राकृत जगत्में लीलाके लिये, भक्तोंका कल्याण करनेके लिये अवतरण हुआ करता है। भगवान्का नाम, रूप, लीला और धाम—ये चारों पूर्णब्रह्मस्वरूप हैं। जैसे भगवन्नामकी महिमा है, वैसे ही उनके विग्रहकी महिमा है, जैसे लीलाका माहात्म्य है, वैसे ही धामका भी माहात्म्य है।

भगवान्की एकलरूपमें अथवा युगलरूपमें अर्थात् अभेदोपासना और भेदोपासना—दोनों ही उपासनाएँ रुचि-भेदके रूपमें भक्तिजगत्में अनादि कालसे चली आयी हैं, इसीलिये श्रीसीतारामाभ्याम् पद भी बनता है और श्रीसीतारामाय पद भी बनता है। ऐसे ही श्रीपार्वतीपरमेश्वराभ्याम् पद भी बनता है और श्रीपार्वतीपरमेश्वराय पद भी बनता है। इसी रूपमें श्रीराधामाधवाभ्याम् पद भी बनता है और श्रीराधामाधवाय पद भी बनता है।

तत्त्व और लीला एक ही स्वरूपकी दो दिशाएँ हैं, तत्त्वमें जो अव्यक्त है, वही लीलामें परिस्फुट है, तत्त्वकी समग्रता ही लीला है और लीलाका निगूढ़ रहस्य ही तत्त्व है। एक ही अद्वितीय परम नित्यानन्द तत्त्व नित्य अखण्ड रहकर भी आस्वाद्य और आस्वादकरूपसे दो नामोंमें अभिव्यक्त होकर लीलायमान है—एक है ब्रजनन्दन श्रीमाधव और दूसरा है वृषभानुदुलारी श्रीराधा। श्रीकृष्ण रसमय हैं और श्रीराधारानी हैं भावमय।

रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव—ये सभी आह्लादिनी शक्तिके ही भाव हैं, इन सभी भावोंका जहाँ पूर्णतम प्रकाश, अनन्ततम प्रकाश है, वह श्रीराधाभाव है और राधा हैं श्रीकृष्णका आनन्द। भगवान् श्रीकृष्ण ही अपने नित्य सौन्दर्य-माधुर्य रसका समास्वादन करनेके लिये स्वयं अपनी ह्लादिनीशक्तिको श्रीराधास्वरूपमें अभिव्यक्त किये हुए हैं।

भक्तोंके मानसपटलके ये भाव श्रीराधामाधवको अत्यन्त प्रीति प्रदान करनेवाले हैं तथा उनके श्रीचरणोंमें प्रेम एवं लौ लगानेवाले हैं। श्रीराधामाधवका मधुरातिमधुर लीलारसप्रवाह अनन्तरूपसे चलता रहता है। श्रीराधामाधवकी निगूढ़ लीलाओंका—अन्तरंग लीलाओंका उन्हीं भक्तोंको दर्शन होता है, जो उसके विशेष अधिकारी हैं और जिनपर राधेश्यामकी विशेष कृपा होती है।

श्रीराधामाधवका परम अवलम्बन एवं पूर्ण आश्रय लेकर भक्तोंकी इन्हीं सब माधुर्यपूर्ण रसधाराका

(सम्पादक)

११- श्रीश्यामसुन्दरका वेणुवादन और श्रीराधारानी ।

‘कल्याण’ के उपलब्ध विशेषाङ्क

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
41	शक्ति-अङ्क	२००	1113	नरसिंहपुराणम्-सानुवाद	१००
616	योगाङ्क-परिशिष्टसहित	२००	1432	वामनपुराण-सानुवाद	१५०
604	साधनाङ्क	२५०	1362	अग्निपुराण— (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)	२००
1773	गो-अङ्क	१९०	557	मत्स्यमहापुराण (सानुवाद)	३००
44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२५०	657	श्रीगणेश-अङ्क	१७०
539	संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	१००	42	श्रीहनुमान-अङ्क (परिशिष्टसहित)	१५०
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१२०	1044	वेद-कथाङ्क (परिशिष्टसहित)	१७५
43	नारी-अङ्क	२४०	1361	संक्षिप्त श्रीवाराहपुराण	१२०
659	उपनिषद्-अङ्क	२००	791	श्रीसूर्याङ्क	१५०
279	संक्षिप्त स्कन्दपुराण	३५०	584	संक्षिप्त भविष्यपुराण	१८०
40	भक्त-चरिताङ्क	२३०	586	शिवोपासनाङ्क	१५०
1183	संक्षिप्त नारदपुराण	२००	653	गोसेवा-अङ्क	१३०
627	संत-अङ्क	२३०	1131	कूर्मपुराण—सानुवाद	१४०
587	सत्कथा-अङ्क	२००	1980	ज्योतिषतत्त्वाङ्क	१३०
636	तीर्थाङ्क	२००	2066	श्रीभक्तमाल	२३०
574	संक्षिप्त योगवासिष्ठ	१८०	1189	संक्षिप्त गरुडपुराण	१७५
1133	सं० श्रीमद्देवीभागवत	२६५	1985	लिङ्गमहापुराण-सटीक	२२०
789	सं० शिवपुराण	२००	1592	आरोग्य-अङ्क (परिवर्धित संस्करण)	२२५
631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	२००	1610	(महाभागवत) देवीपुराण सानुवाद	१२०
572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	२२०	1184	श्रीकृष्णाङ्क	२००
517	गर्ग-संहिता	१५०	2125	श्रीशिवमहापुराणाङ्क [हिन्दी भाषानुवाद-I] (पूर्वार्ध)	१४०
1135	श्रीभगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क	१६०	2035	श्रीगङ्गा-अङ्क	१३०
1132	धर्मशास्त्राङ्क	१५०			

सत्संगके कुछ संग्रहणीय ग्रन्थ

तत्त्वचिन्तामणि (ग्रन्थाकार)—इस ग्रन्थका प्रकाशन पूर्वप्रकाशित अलग-अलग सात भागों तथा विभिन्न शीर्षकोंकी तरह पुस्तकोंमें समायोजित सामग्री पाठकोंको एक साथ उपलब्ध करानेके उद्देश्यसे किया गया है। कपड़ेकी मज़बूत जिल्द एवं आकर्षक लेमिनेटेड आवरणके साथ, (कोड 683), पृ०-सं० १०३२, मूल्य ₹१८०, (कोड 1650) मूल्य ₹१५०, गुजराती भी।

साधन-सुधा-सिन्धु (ग्रन्थाकार)—इस ग्रन्थमें वि० सं० २०५३ तक प्रकाशित स्वामीजीकी लगभग ५० पुस्तकोंका दुर्लभ ग्रन्थाकार संकलन किया गया है। पृष्ठ-सं० १००८, कपड़ेकी मज़बूत जिल्द (कोड 465), मूल्य ₹१७०; (कोड 1473), ओड़िआ, मूल्य ₹२००; (कोड 1630), गुजराती, मूल्य ₹१२५

भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार)—छः भागोंमें पूर्वप्रकाशित विभिन्न महत्त्वपूर्ण लेखोंका एक ही जिल्दमें अनुपम संग्रह। कपड़ेकी मज़बूत जिल्द तथा आकर्षक लेमिनेटेड आवरणसहित, (कोड 820), मूल्य ₹१३०



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

**I creator of
hinduism
server!**



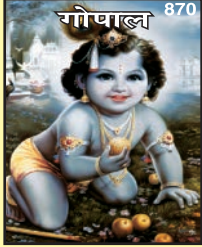
KAPWING

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित रंगीन चित्र-कथाएँ

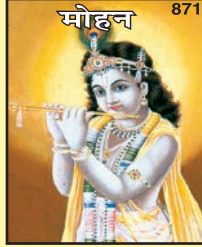
[२३ पुस्तकें एक साथ मँगवानेपर रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च मुफ्त ।]



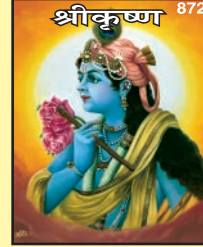
कोड 869 ₹ १५



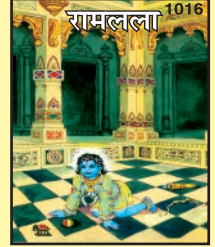
कोड 870 ₹ १५



कोड 871 ₹ १५



कोड 872 ₹ १५



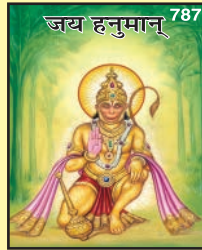
कोड 1016 ₹ २५



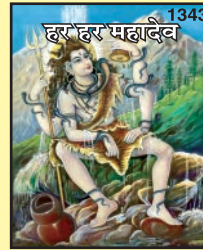
कोड 1017 ₹ २५



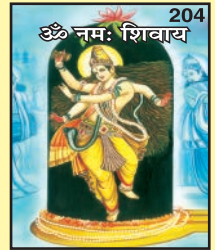
कोड 1116 ₹ २५



कोड 787 ₹ २५



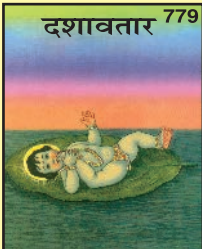
कोड 1343 ₹ २५



कोड 204 ₹ २५



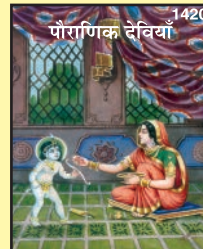
कोड 829 ₹ १५



कोड 779 ₹ १५



कोड 1647 ₹ २५



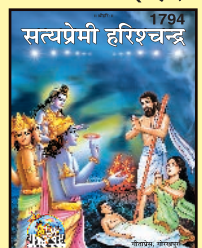
कोड 1420 ₹ १५



कोड 1278 ₹ १५



कोड 1442 ₹ २५



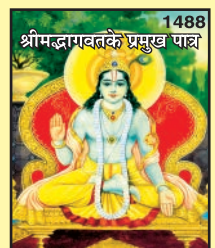
कोड 1794 ₹ २५



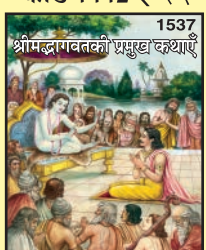
कोड 868 ₹ २५



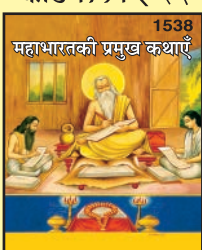
कोड 1443 ₹ २५



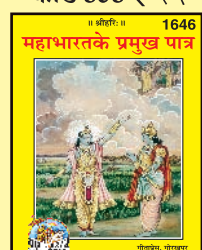
कोड 1488 ₹ २५



कोड 1537 ₹ २५



कोड 1538 ₹ २५



कोड 1646 ₹ २५

उपर्युक्त २३ पुस्तकें एक साथ मँगवानेपर पुस्तक मूल्य ₹ ४९५, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च मुफ्त। टोटल ₹ ४९५ भिजवाकर १ सेट बाल-साहित्य मँगवा सकते हैं। इसमें विभिन्न विषयोंपर चित्रोंके माध्यमसे बालकोंको सुन्दर एवं व्यावहारिक शिक्षा दी गयी है।

यह योजना ३१ अगस्त २०१८ तकके लिये है।